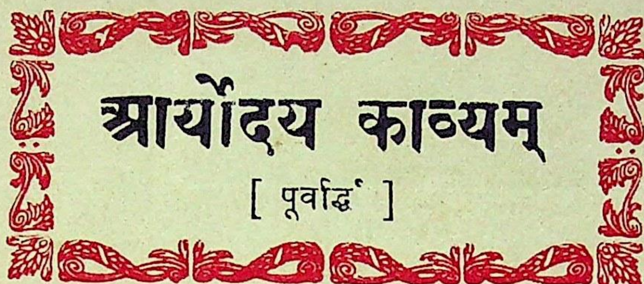


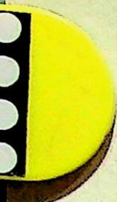
राज्यपाल एम० एस० अणे :—

Your poem shows your mastery of Sanskrit language. The lines move smoothly and melodiously. Most lofty sentiments are expressed in simple but elegant style.

I congratulate you on your learned effort to popularize Sanskrit language at this time. The readers of your fluent verses will see that Sanskrit language is as living as any other so-called living language of the civilized world, and it is more powerful in expressing the deepest emotions of the Indians than any vernacular or foreign language.

गंगा प्रसाद उपाध्याय

मू० ३·००





ओ३म्

आर्य्योदयकाव्यम्

(भाषानुवादसहित)





प्रणेता—

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०



मुद्रक एवं प्रकाशक

कला प्रेस, इलाहाबाद—२

द्वितीय संस्करण] १९७१ [मूल्य ३·००

विषय-सूची

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय—संक्षिप्त जीवनी

६ सितम्बर १८८१ ई० को काली नदी के तट पर स्थित नँदरई (कासगंज) में जन्म हुआ। १० वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया। कष्ट के साथ हिन्दी और अँग्रेजी मिडिल कक्षायें उत्तीर्ण कीं। मैट्रिक होते ही सरकारी नौकरी करके परिवार का पालन आरम्भ किया। इन्टर, बी० ए० और एम० ए० प्राईवेट रूप से पास किया। १९१२ में एम० ए० अँग्रेजी विषय में और १९२३ में एम० ए० दर्शन विषय लेकर उत्तीर्ण किया। आरम्भ से ही आर्य समाज के कार्य में रुचि थी। सरकारी नौकरी से प्रचार कार्य में बाधा पड़ती थी, अतः पेंशन का लालच न करते हुये १९१८ में सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया, और डी० ए० वी० हाई स्कूल इलाहाबाद में प्रधानाचार्य पद पर कार्य करना आरम्भ किया। स्थानीय प्रचार के साथ-साथ आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशनों में भाग लेते रहे। लेख द्वारा तथा व्याख्यानों द्वारा आर्य समाज की सेवा करते रहे।

दर्शन तथा सिद्धान्त सम्बन्धी अनेकों उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखे। १९३१ में 'आस्तिकवाद' ग्रन्थ पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्रदान किया। सन् १९३१ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झाँसी अधिवेशन में दर्शन परिषद् के सभापति निर्वाचित हुये। १९४१ से १९४४ तक आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे। हैदराबाद सत्याग्रह में श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के आदेश से निरन्तर कार्य करते रहे। १९४६ से १९५१ तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के प्रधान मन्त्री रहे। १९५० में "वैदिक कल्चर" अँग्रेजी पर अमृतधारा पुरस्कार मिला : उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा १९५१ में 'कम्यूनिज्म' ग्रंथ पर, १९५२ में 'ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य' पर और १९५५ 'जीवन-चक्र' पर पुरस्कार मिले।

१९५० में आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिणी अफ्रीका की रजत जयन्ती में सम्मिलित होने गये और कई मास तक उस देश में वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। सन् १९५१ में बर्मा, थाईलैंड और सिंगापुर प्रचारार्थ गये। आपने काश्मीर से लेकर सुदूरवर्त्ती दक्षिण तक आर्य समाज का प्रचार किया। बङ्गाल, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र और पंजाब में अनेकों अवसरों पर सम्मेलनों के अध्यक्ष बनाये गये। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी और अँग्रेजी भाषा पर समान रूप से अधिकार था।

आपकी महती सेवाओं के लिये दीक्षा शताब्दी समारोह मथुरा के अन्तर्गत २५ दिसम्बर १९५९ को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के कर कमलों से अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया।

आपके दार्शनिक ग्रन्थों में आस्तिकवाद, अद्वैतवाद, जीवात्मा, Philosophy of Dayanand, Vedic Culture, Worship, Reason & Religion, Superstition, वारी ताला (उर्दू) मुख्य हैं। शांकर-भाष्यालोचन, सायण और दयानन्द, राममोहनराय-केशवचन्द्र-दयानन्द, शंकर-रामानुज-दयानन्द, कम्यूनिज्म, सर्वदर्शन संग्रह धम्मपद तुलनात्मक ग्रन्थ हैं। सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद Light of Truth नाम से किया है। मनुस्मृति, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, मीमांसा दर्शन के हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किये हैं। इस्लाम के दीपक, आर्य समाज और इस्लाम प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आर्योदय (दो भाग) संस्कृत में काव्य है। कौसे कज़ा उर्दू कविता संग्रह।

आपने १०० से ऊपर ट्रैक्ट और १०० के लगभग उच्चकोटि के ग्रन्थों का निर्माण किया है। जीवन के अन्तिम क्षण तक आपकी लेखनी तीव्रता से चलती रही।

२९ अगस्त १९६८ को ८७ वर्ष की अवस्था में आपका प्रयाग में देहावसान हुआ।

ओ३म्

आर्यार्योदयः

प्रस्तावना

ज्ञान-शक्ति-क्रियामूलं, नित्यं चानित्य-कारणम् ।
प्रत्न-नूतन-विद्वद्भि-रीड्यमीडे प्रभुं विभुम् ॥१॥

ज्ञान, शक्ति तथा क्रिया के आधार, नित्य, सब अनित्य पदार्थों के कारण, व्यापक प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ जो प्राचीन और नवीन सभी विद्वानों द्वारा स्तुत्य है ।

यस्मात् संजायते सृष्टिः, पाल्यते येन च प्रजा ।
यस्मिन् याति लयं सर्वं, तस्मै सद् ब्रह्मणे नमः ॥२॥

उस सत्य स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा प्रजा का पालन होता है और जिसमें सब कुछ लय हो जाता है ।

त्यागेन तपसा येषां, प्रतता ज्ञान-संततिः ।
प्राप्ता चाद्यतनैर्लोकै-स्तान् नमामि गुरूनहम् ॥३॥

जिनके त्याग और तप से ज्ञान का सूत्र फैला और वर्तमान युग के लोगों को प्राप्त हो सका उन गुरुओं को मेरा नमस्कार हो ।

जननी सर्वजातीनामार्यजातिर्यशस्विनी ।
वक्ष्ये तस्याः समासेन, किंचिद् वृत्तं मयःप्रदम् ॥४॥

जो यशवाली आर्य्य जाति अन्य सब जातियों की माता है, उसका थोड़ा सा सुख देनेवाला वर्णन संक्षेप से करूँगा ।

कथं सर्ग-समारम्भे, जाता कुत्र कदा च सा ।
कथं वृद्धिं च सम्प्राप्ता, तस्याः सुकृतयश्च काः ॥५॥

सृष्टि के आरम्भ में वह आर्य्य जाति, कैसे, कहाँ, कब उत्पन्न हुई कैसे बढ़ी और उसने क्या क्या अच्छे काम किये ।

क्रीडनं बाल्यकालस्य, चाञ्चल्यं दोषवर्जितम् ।
नवा स्फूतिर्नवा कान्तिर्नवं रक्तं नवा गतिः ॥६॥

बाल अवस्था का खेल, दोषरहित चंचलता, नई स्फूर्ति, नया रक्त, नई गति ।

यौवनस्य च सौन्दर्यं, लीला लोला ललामता ।
दर्पः कन्दर्प-मात्सर्यें, मानं, गर्वो मदान्धता ॥७॥

जवानी का सौन्दर्य, लीला, चपलता, चमक दमक, क्रोध, काम, मत्सरता, मान, अभिमान, और मदान्धता ।

भोगा मनसिजाकारा, रोगा भोगानुगामिनः ।
दैन्य-दारिद्र्य-दासत्वं, दुःखं दुःसहपीडनम् ॥८॥

काम-तृप्ति के अनुकूल भोग, भोगों के अनुकूल रोग, दीनता, दरिद्रता, दासत्व, दुःख और असह्य पीड़ा ।

धर्मार्थकाममोक्षार्थं क्वचिद् यतनशीलता।
क्वचित् क्रोधश्च कामश्च, लोभो मोहश्च घातकः ॥९॥

कहीं तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिये यत्नशील होना और कहीं नाश करने वाले काम क्रोध, लोभ, मोह।

चित्रितं जीवनं जातेराशानैराश्यमिश्रितम्।
सद्रजस्तमसां साम्यं धर्माधर्मसमन्वितम् ॥१०॥

जाति का जीवन आशा निराशा से मिला हुआ, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का मिला जुला, धर्म और अधर्म से युक्त।

क्वचिद्ध्रासः क्वचिद् वृद्धिः, क्वचिज्जयपराजयौ।
क्वचित् पापं क्वचित् पुण्यं, क्वचिद् दुःखं क्वचित् सुखम् ॥११॥

कहीं ह्रास, कहीं वृद्धि, कहीं जय, कहीं पराजय, कहीं पाप, कहीं पुण्य, कहीं दुःख, कहीं सुख।

सितासितानि कोष्ठानि शतरंगपटे यथा।
जीवनस्य पटे जातेः, क्वचिद् रात्रिः क्वचिद् दिनम् ॥१२॥

जैसे शतरंज में कोई घर सफेद, कोई काला होता है इसी प्रकार से जाति के जीवन में कभी रात होती है कभी दिन।

कथं जातेः समुत्थानं, कथं सर्वत्र पूज्यता।
अधोगतिः कथं तस्याः, परेषां दासता कथम् ॥१३॥

आर्य्य जाति कैसे बढ़ी, कैसे सबकी पूज्य हुई, फिर उसकी गिरावट कैसे हुई और दूसरों की दासता में कैसे आई।

आगताश्च गता नाना, जातयो जगतीतले ।
यासां चिह्नानि नष्टानि, सिकताद्रिरिवोदधौ ॥१४॥

इस संसार में बहुत सी जातियाँ आईं और चली गईं । जिनके चिह्न ऐसे नष्ट हो गये जैसे समुद्र में रेत के पहाड़ों के चिह्न नहीं रहते ।

का आसँस्ता न जानीमः कासीत् तासां सुसंस्कृतिः ।
के दोषाश्च गुणास्तासां, कथं जाता मृताश्च ताः ॥१५॥

हम नहीं जानते कि वे कौन जातियाँ थीं । उनकी संस्कृति कैसी थी, उनके दोष या गुण क्या थे । वे कैसे उत्पन्न हुईं कैसे मरीं ।

परन्तु खलु वृद्धेयमार्य्यजातिश्चिरायुषी ।
तिष्ठत्येव सुदार्ढ्येन हिमवानिव वारिधौ ॥१६॥

परन्तु यह चिरायु वृद्धा आर्य्य जाति दृढ़ता पूर्वक ऐसी खड़ी है जैसे समुद्र में पहाड़ ।

क आसीदन्यजातीनां मध्ये दोषो गुणोऽथवा ।
क्षिप्रं जाता मृता येन, प्रावृषेण्या लता इव ॥१७॥

अन्य जातियों में क्या दोष या गुण था जिसके कारण वे बरसात की लता के समान उत्पन्न होते ही मुरझा गईं ।

जीवनस्यार्य्यजातेश्च वर्तते का विशेषता ।
येनैषाचिरजीवित्वं वटवृक्षइवाश्नुते ॥१८॥

आर्य्य जाति के जीवन में क्या विशेषता है कि यह वट वृक्ष के समान दीर्घायु है ।

इतिहासविदामेषा, समस्या शिक्षणप्रदा ।
गूढामर्हति मीमांसां, विदुषां तत्त्वदर्शिनाम् ॥१९॥

यह शिक्षाप्रद गूढ़ समस्या तत्वदर्शी विद्वानों के लिये विचार करने योग्य है ।

काव्येऽस्मिन् सर्वमेवैतद् विवक्षुर्व्यासरीतितः ।
स्खलनं क्षन्तुमर्हन्ति क्षीरनीरविवेकिनः ॥२०॥

इस काव्य में मैं विस्तार से यह सब कहना चाहता हूँ । क्षीर और नीर के विवेकी जन मेरी भूलों को क्षमा करें ।

इति प्रस्तावना ।

अथ प्रथमः सर्गः

जीवनस्य विकासार्थं, यथापूर्वं प्रजापतिः ।
विगतप्रलयस्यान्ते, पुनः सृष्टिमकल्पयत् ॥ १ ॥

गत प्रलय के अन्त में ईश्वर ने जीवन के विकाश के लिये पिछले कल्पों की भांति इस कल्प में भी फिर सृष्टि की रचना की।

अव्यक्तासीदबोद्धव्या प्रकृतिर्विश्वधारिणी ।
अनिर्वाच्या प्रसुप्तेव, तमसावृतशर्वरी ॥ २ ॥

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व समस्त विश्व को धारण करने वाली प्रकृति अव्यक्त और अज्ञेय रूप में थी। उसका निर्वचन संभव नहीं था। अन्धकारमय रात्रि के समान सुषुप्ति की सी अवस्था थी।

न द्यौरासीन्नवा भूमि र्नैव तारागणोऽथवा ।
सलिलमप्रकेतं च शून्ये शून्यमिवस्थितम् ॥ ३ ॥

न द्यौलोक था न पृथिवी न तारागण! बिना भेदकचिह्न के सब सूक्ष्म जलमय था। शून्य में शून्य के समान स्थिति थी।

नासीद् व्यक्तिः समष्टिर्वा, न च काचित् पदार्थता ।
सद्रजस्तमसामासीत् साम्यं सर्वत्र सर्वथा ॥ ४ ॥

व्यक्तित्व न था न समष्टित्व, न कोई पदार्थपना। सर्वत्र सब प्रकार से सत् रज और तम की साम्य अवस्था थी।

भूषणानि यथा स्वर्णे, मृत्तिकायां घटा यथा ।
निहितानि तथैवासन् सर्वकार्य्याणि कारणे ॥ ५ ॥

जैसे सोने में भूषण या मिट्टी में घड़े उसी प्रकार सब कार्य्य कारणरूप में निहित थे।

श्रान्तेषु सत्सु जीवेषु, दीर्घकालिककर्मभिः ।
विश्रामाय प्रसुप्तेषु, नासन् भोगा न भोगिनः ॥ ६ ॥

बहुत दिनों काम करते करते जीव थक गये और विश्राम के लिये सो गये। अतः भोगने के पदार्थ भी न रहे। और भोग नहीं तो भोगी भी नहीं। (यह प्रलय की अवस्था है।)

आसीदेका महाशक्तिः सुषुप्तौ प्राणसन्निभा ।
त्रिकालमधितिष्ठन्ती रक्षन्तीव चराचरम् ॥ ७ ॥

जैसे सुषुप्ति में प्राण चलते हैं इसी प्रकार प्रलय के समय भी ईश्वर की महाशक्ति तीनों कालों से अतीत चर और अचर की रक्षा सी कर रही थी।

व्यतीतायां महारात्रौ नवोषःसु पुरा महत् ।
महादिनं समानेतुं तपो धात्राऽन्वतप्यत ॥ ८ ॥

जब महारात्री बीत गई तो महादिन लाने के लिये उषाकाल में विधाता ने बड़ा तप किया।

संजातस्तपसा क्षोभो, गतिशून्येषु पीलुषु ।
अजीजनत् ततो विश्वं विश्वकर्मा मयोभवः ॥९॥

तप से गतिशून्य परमाणुओं में क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसी के पश्चात् सुख के उत्पादक विश्वकर्मा जगदीश्वर ने विश्व को रचा।

प्रकृतौ विकृतिर्जाता, प्रादुर्भूतं गुणत्रयम् ।
साम्येऽजायत वैषम्यं, बहुत्वं चैकत्तत्वतः ॥१०॥

प्रकृति में विकृति हुई । तीन गुणों का प्रादुर्भाव हुआ । समता में विषमता और एक तत्त्व से बहुत्व की उत्पत्ति हुई ।

क्रियायाश्च समारम्भे, कालभावोऽध्यजायत ।
समा मासो दिवा रात्रिः, पलानि विपलानि च ॥११॥

क्रियाओं के आरम्भ होने पर काल का भाव उत्पन्न हुआ । वर्ष, महीने, रात, दिन, पल और विपल ।

घटिके रचयामास कालज्ञो द्वे महाप्रभुः ।
नराणां कालमानाय, भानुं चन्द्रमसं तथा ॥१२॥

काल के ज्ञाता ईश्वर ने काल के नापने के लिये सूर्य और चाँद दो घड़ियाँ बनाईं ।

दिवं च पृथिवीं स्वश्च, विभिन्नानि रजांसि च ।
आदित्याँश्च वसून् रुद्रानिन्द्रं यज्ञं प्रजापतिम् ॥१३॥

द्यौलोक, पृथ्वीलोक, स्वःलोक, अनेक लोक लोकान्तर, आदित्य वसु, रुद्र, यज्ञ और प्रजापति को उत्पन्न किया ।

भूमौ नदीर्नगान् वृक्षान्, वनानि च वनस्पतीन् ।
साधनं कर्मभोगानां, विश्वेषां च तनूभृताम् ॥१४॥

भूमि पर नदी, पहाड़, वृक्ष, वन, वनस्पति बनाये जो सब शरीर-धारियों के कर्म और भोग के साधन हुये ।

व्याल व्याघ्र वराहाँश्च, पशून् पक्षिगणांस्तथा ।
जन्तून् कीट पतङ्गादीन् द्विपदांश्च चतुष्पदान् ॥१५॥

साँप, सुअर, पशु, पक्षी, कीट पतंग, दुपाये और चौपाये बनाये ।

अभुक्तफलकर्माणो ये वा जीवेषु चाभवन् ।
तेषामेवानुसारेण नाना योनीरवाप्नुवन् ॥१६॥

जिन जीवों के कर्मों के फल भोगने से शेष रह गये थे । उन्हीं के अनुसार उनको भिन्न-भिन्न योनियाँ मिलीं ।

आदौ सर्गस्य कल्पेऽस्मिन्, पृथ्वीलोके त्रिविष्टपे ।
अनुकूलस्थितौ सत्यां, जातो मनुतनूदयः ॥१७॥

इस कल्प की सृष्टि के आदि में भूलोक पर अनुकूल स्थिति में तिब्बत में मनुष्य उत्पन्न हुये ।

नरा जाता युवानश्च, युवत्यो महिलास्तथा ।
समर्थाः सन्ततेर्वृद्धौ, सहस्तोमाः सहव्रताः ॥१८॥

युवा नर और युवती नारियाँ उत्पन्न हुईं जो संतान की वृद्धि कर सकें । वे एक सी पूजा और एक से व्रत वाले थे ।

कल्याणाय मनुष्याणां सर्वज्ञः परमेश्वरः ।
चतुर्भ्य ऋषिवर्येभ्यो ददौ वेदचतुष्टयम् ॥१९॥

सर्वज्ञ ईश्वर ने मनुष्यों के कल्याण के लिये चार ऋषियों को चार वेद दिये ।

ऋग्वेदमग्नयेऽयच्छद् यजुर्वेदं च वायवे ।
आदित्याय च सामान्याथर्वाण्यंगिरसे तथा ॥२०॥

अग्नि को ऋग्वेद, वायु को यजुर्वेद, आदित्य को सामवेद, अंगिरा को अथर्ववेद ।

सर्वे वेदानुगा आसन् सर्वे धर्मपरायणाः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामर्जने स्नेहसंयुताः ॥२१॥

सब वेदों के अनुकूल चलते थे । सब धर्मपरायण थे । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के उपार्जन में स्नेहपूर्वक जुट जाते थे ।

आसीन्न मतवैषम्यं, न च धर्मविभिन्नता ।
समाख्यानाः सखायश्च रता एकेशपूजने ॥२२॥

मतभेद न था । न अनेक मत थे । सखा भाव था अर्थात् उनकी प्रार्थनायें एक सी होती थीं । सब एक ही ईश्वर को पूजते थे ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णाश्चतुर्विधाः ।
गुणकर्मस्वभावैश्च समाजस्य हिते रताः ॥२३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र गुणकर्म स्वभाव के अनुसार चार वर्ण समाज का हित करने में रत रहते थे ।

विभक्ता अपि संयुक्ता मुखबाहूरुपादवत् ।
वर्धयन्ति स्म कल्याणं, विश्वेषां प्राणिनां सदा ॥२४॥

जैसे मुख, बाहु जंघा और पैर अलग होते हुये भी जुड़े रहते हैं इसी प्रकार वे चार वर्ण सदा सब प्राणियों के कल्याण की वृद्धि करते थे ।

ज्येष्ठत्वं न कनिष्ठत्वं नापि विद्वेषभावना ।
बबाधे कस्यचिन्मार्गं तस्मिन् स्वर्णमये युगे ॥२५॥

उस स्वर्ण काल में बड़प्पन, छुटपन या द्वेष किसी की उन्नति में बाधक नहीं होते थे ।

स्वाधीना महिला आसन् निजकर्तव्यपालने ।
गृहधर्मानुसारिण्यो वीरस्वश्च पतिव्रताः ॥२६॥

स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्यों के पालन में स्वतत्र थीं । गृहस्थ धर्म का पालन करने वाली, वीरों को जन्म देने वाली और पतिव्रता ।

जनानां महती संख्या यदा चाभूत् त्रिविष्टपे ।
तदा निम्न प्रदेशेषु, शनैर्लोका अवातरन् ॥२७॥

जब तिब्बत में मनुष्यों की सख्या बढ़ गई तो शनैः शनैः नीचे उतर आये ।

गिरिं भित्वा वनं छित्वा, कृष्ट्वा विस्तृतमेदिनीम् ।
खनित्वा खनिजान् धातून्, प्रतेनुर्जीवनं महत् ॥२८॥

उन्होंने पहाड़ को तोड़ कर, वन को काट कर, विस्तृत भूमि को जोत कर खनिज धातुओं को खोद कर विशाल जीवन का विस्तार किया ।

प्राणिघ्नान् श्वापदान् हत्वा, वशे कृत्वा पशूँस्तथा ।
पुराणि वासयामासुः सुराष्ट्राणि महान्ति च ॥२९॥

हिंसक प्राणियों को मारा, पशुओं को वश में किया, नगर और बड़े बड़े राज्य स्थापित किये ।

आर्य्यैः श्रेष्ठतमैर्लोकैरावृतं तेन हेतुना ।
आदिमं सर्वराष्ट्राणामार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥३०॥

सबसे पहले राष्ट्र का नाम आर्य्यावर्त्त इसलिये पड़ा कि इसको आर्य्यों ने बसाया । आर्य्य का अर्थ हैं श्रेष्ठतम लोग ।

उत्तरे हिमवानस्य गिरीणां प्रपितामहः ।
द्युलोकेन युनक्तीव भूलोकं शिखरैः स्वकैः ॥३१॥

सब पहाड़ों का परदादा हिमालय इसके उत्तर में है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपनी चोटियों द्वारा भूलोक को द्यौलोक से मिलाता है । अर्थात् मर्त्यलोक और स्वर्गलोक का मेल कराता है ।

पूजनाय महेशस्य मन्ये लोकस्य गच्छतः ।
चरणक्षालने सज्जौ दक्षिणे द्वौ महोदधी ॥३२॥

मैं तो ऐसा समझता हूँ कि ईश्वर की आराधना के लिये लोक चल पड़ा तो दक्षिण के दो समुद्र उसके पैर धुलाने के लिए तैयार हो गये ।

गंगायमुनयोर्मध्ये केन्द्रीभूताऽऽर्य्यसंस्कृतिः ।
जगन्ति भासयामास स्वात्मविज्ञानरश्मिभिः ॥३३॥

आर्य्य संस्कृति ने गङ्गा और यमुना नदियों के बीच में केन्द्रीभूत होकर अपने आत्म-विज्ञान की किरणों द्वारा समस्त जगत् को प्रकाशित किया ।

आर्य्यावर्त्ताद् विनिर्गत्य समन्विष्य नवां महीम् ।
प्रसेरुर्दिक्षु सर्वासु वेदधर्मप्रचारकाः ॥ ३४ ॥

आर्य्यावर्त्त से चलकर नई भूमि को खोज कर वेद धर्म के प्रचारक सब दिशाओं में फैल गये।

ववृते धर्म एकोहि सर्वदेशेषु भूतले।
एका जातिर्मतं चैकमेकं धर्मस्य पुस्तकम् ॥ ३५ ॥

पृथ्वी तल पर सब देशों में एक ही धर्म था। एक जाति थी। एक मत था और एक ही शास्त्र था।

आसीद् व्यक्तिषु नानात्वमेकत्वं च समष्टिषु।
ओतप्रोतानि राष्ट्राणि चैकसूत्रे परस्परम् ॥ ३६ ॥

यद्यपि व्यक्ति रूप से सब अलग अलग थे तथापि समष्टि रूप से सब एक थे। सब राष्ट्र परस्पर एक सूत्र में पुरोये हुये थे।

मिलित्वाऽखिलविद्वांसः समाविश्चक्रिरे कलाः।
याभिर्जीवनयात्रायां सौकर्यं सर्वथा भवेत् ॥ ३७ ॥

सब विद्वानों ने मिलकर कलायें निकालीं जिनसे जीवन-यात्रा सुगम हो।

पन्थानः सुकृता विज्ञैरन्तरिक्षे जले स्थले।
विविधानि च यानानि गमनाऽऽगमनार्थिभिः ॥ ३८ ॥

जाने आने वाले विद्वानों ने अन्तरित्त, जल और थल में मार्ग तथा नाना-प्रकार के यान बनाये।

विमानैः शकटैर्नौभिः सुगैश्च सुखकारिभिः।
जग्मुः सर्वत्र निर्बाधमार्य्या अभ्युदयप्रियाः ॥ ३९ ॥

लौकिक उन्नति को चाहने वाले आर्य्य अच्छे प्रकार से चलने वाले, सुखदायक विमानों, गाड़ियों और नौकाओं द्वारा विना रोक टोक के सब जगह जाते थे।

विद्या-धर्म-प्रिया विप्राः क्षत्रिया रक्षणप्रियाः ।
व्यापारवर्धिनो वैश्या विचेरुर्विश्वमण्डले ॥ ४० ॥

ब्राह्मण विद्या और धर्म को प्यार करने वाले, क्षत्रिय रक्षा कर्म को चाहने वाले, वैश्य व्यापार को बढ़ाने वाले समस्त विश्व में विचरते थे।

समुत्तुङ्गानि हर्म्याणि रम्याणि भुवनानि च ।
निर्मितानि महाप्राज्ञैर्वास्तुविद्याविशारदैः ॥ ४१ ॥

विद्वान इंजिनियरों ने ऊँचे-ऊँचे महल और सुन्दर भवन बनाये।

वासांसि बहुमूल्यानि शोभनानि मृदूनि च ।
ऊर्ण-कर्पासपट्टानि तन्तुवायैस्तथोयिरे ॥ ४२ ॥

और वस्त्र बुनने वालों ने बहुमूल्य सुन्दर कोमल ऊन, कपास और रेशम के वस्त्र बनाये।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तये च यथाविधि ।
उद्योगं चक्रिरे सर्वे त्यक्त्वा दोषचतुष्टयम् ॥४३॥

चार दोषों अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह को छोड़कर सब यथाविधि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये उद्योग करते थे।

क्षुधाऽऽसीन्न क्षुधापीडा प्राचुर्यात् खाद्यपेययोः ।
वसूनि सुखहेतूनि बुभुजुः सर्वमानवाः ॥४४॥

लोगों को भूख तो लगती थी (क्योंकि वे स्वस्थ थे) परन्तु खाने पीने को इतना अधिक था कि भूख की पीड़ा नहीं सताती थी, सब मनुष्य सुख के पदार्थों को भोगते थे ।

ज्ञानं शक्तिर्धनं धैर्य्यं सुमतिर्दीर्घदर्शिता ।
यज्ञस्त्यागश्च सौहार्दं भूषयाञ्चक्रिरे जनान् ॥४५॥

ज्ञान, शक्ति, धन, धैर्य, सुमति, दूरदर्शिता, यज्ञ, त्याग और मित्रता आदि गुणों से लोग भूषित थे ।

आश्रमाणां चतुर्णां च शोभनाऽऽसीद् व्यवस्थितिः ।
प्ररोहन् सर्वलोकानां बीजरूपाश्च शक्तयः ॥४६॥

चारों आश्रमों की सुन्दर व्यवस्था थी । सब लोगों की बीजशक्तियाँ विकास को प्राप्त होती थीं ।

प्रवृत्तिस्तामसी येषां किलासीदुद्भवक्षणे ।
संपर्केण समाजस्य राजसी सा व्यजायत ॥४७॥

जिन लोगों की जन्म के समय तमोगुणी प्रवृत्ति होती थी वह समाज की संगति में पड़कर रजोगुणी हो जाते थे । अर्थात् एक दर्जा ऊँचे ।

राजसीं वृत्तिमादाय, ये ये जन्मानि लेभिरे ।
सुसंगस्य प्रभावेण, जाताः सत्त्वगुणाश्रयाः ॥४८॥

जो लोग राजसी वृत्ति लेकर जन्म लेते थे वे सुसंग के प्रभाव से सतोगुणी हो जाते थे। (समाज का प्रभाव व्यक्तियों पर अच्छा पड़ता था।)

अवापुः शैशवे विद्यामिहामुत्रसुखप्रदाम् ।
बालाश्च बालिकाश्चैव ब्रह्मचर्यव्रताश्रिताः ॥४९॥

बालक और बालिकायें दोनों ब्रह्मचर्यव्रत के आश्रित बालकपन में लोक और परलोक दोनों के सुखों को देने वाली विद्या प्राप्त करते थे।

गृहीत्वाऽचारमाचार्य्यादाचारात् तोषमात्मनः ।
आत्मतोषान् मुमुक्षत्व, ततोऽन्ते परमं पदम् ॥५०॥

आचार्य से आचार सीखते थे। आचार से आत्मसंतोष होता था। आत्मसंतोष से मुक्ति की इच्छा उत्पन्न होती थी। और उससे अन्त में परम पद मोक्ष मिलता था।

पितृभ्यां चक्षुषी प्राप्य बाह्यरूपप्रदर्शिके ।
शास्त्र नेत्रं गुरोश्चैव त्र्यम्बकत्वमवाप्नुवन् ॥५१॥

माँ बाप से तो बाहर का रूप देखने वाली दो आँखें मिलती थीं, गुरु से शास्त्र रूपी आँख मिल जाती थी। इस प्रकार वे लोग त्र्यम्बक अर्थात् तीन आँखों वाले हो जाते थे।

संप्राप्य यौवनावस्थां गृहभारोद्वहक्षमाम् ।
ऋणं पैत्र्यमपाकर्त्तुं विवाहं चक्रतुर्वरौ ॥५२॥

गृहस्थ का भार उठा सकने वाली जवानी को पाकर पितृ ऋण को चुकाने के लिये वर और वधू विवाह करते थे। (वरा च वरश्च वरौ)।

धर्मेणार्थं च संगृह्य संभारान् गृहसाधकान् ।
गृहस्था ज्वालयामासुः स्नेहाज्जीवनदीपकम् ॥५३॥

धर्म से धन कमाकर और गृहस्थ की वस्तुओं को इकट्ठा करके गृहस्थ लोग प्रेम रूपी तेल से अपने जीवन का दीपक जलाते थे।

वार्धक्ये चैव संप्राप्ते, गृहं संत्यज्य सततौ ।
मुनिधर्मं चरन्तौ द्वौ जग्मतुर्दम्पती वनम् ॥५४॥

बुढ़ापे में घर को सन्तान पर छोड़कर मुनिधर्म को पालते हुए स्त्री पुरुष दोनों वन को चले जाते थे।

त्यक्त्वा लोभं च मोहं च तपस्तप्त्वा यथाक्रमम् ।
सुसम्पाद्य च वैराग्यमन्ते मुक्तिमवाप्नुवन् ॥५५॥

लोभ और मोह को छोड़कर क्रमशः तप करके वैराग्य होने पर अन्त में मुक्ति का लाभ करते थे।

यथा पक्वं फलं वृक्षो यथाऽहिश्च निजत्वचम् ।
त्यजन्तिस्म विना मोहं पूर्वे जातास्तथा तनुम् ॥५६॥

जैसे वृक्ष से पका फल गिर जाता है या साँप केंचुल को छोड़ देता है। उसी प्रकार पूर्वज लोग बिना मोह के शरीर त्याग देते थे।

दैवीं नावं समारुह्य वेदधर्मस्वरूपिणीम् ।
संसारसागरं तीर्त्वा लेभिरे परमं पदम् ॥ ५७ ॥

वेदधर्म रूपी दिव्य नौका पर सवार होकर संसार सागर को तैर कर परम पद मोक्ष पाते थे।

लोकमभ्युदयेनेमं परं निःश्रेयसेन च।
सर्वे सम्पादयामासुस्तस्मिन् वेदपरे युगे ॥ ५८ ॥

उस वैदिक काल में सब लोग अभ्युदय से इस लोक को और निश्रेयस से परलोक को प्राप्त करते थे।

उष्णतां च प्रकाशं च यथैवाह्लाददायकौ।
बालार्काद्दिवसस्यादौ लभन्ते देहधारिणः ॥ ५९ ॥

तथा ब्रह्मदिनादौ च चक्रिरे वैदिका जनाः।
वेदार्काज् ज्योतिरादाय, निष्प्रमादं स्वजीवनम् ॥ ६० ॥

जैसे प्रातःकाल का सूर्य्य सब लोकों को सुखकारक गर्मी और प्रकाश देता है उसी प्रकार ब्रह्मदिन के आदि में वैदिक लोग वेद रूपी सूर्य्य से ज्योति लेकर अपने जीवन को प्रमाद रहित बनाते थे।

प्रातःकाले यथा वायुर्मन्दः शीतः ससौरभः।
आदिकाले तथा सृष्टेरासीत् सर्वं सुखप्रदम् ॥ ६१ ॥

जैसे सवेरे के समय वायु मन्द, ठंडी और सुगन्ध युक्त होती है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में सभी बातें सुख देनेवाली थीं।

गंगाया आदिमं स्रोतो यथा दोषविवर्जितम् ।
सृष्टेरादौ तथैवासीन् निर्मलं जीवनं नृणाम् ॥ ६२ ॥

जैसे गंगा का पहला स्रोत दोष रहित होता है इसी प्रकार सृष्टि के आरंभ में लोगों का जीवन निर्मल था ।

इत्यार्योदये सृष्टि-प्रभातनामा प्रथमः सर्गः ।

अथ द्वितीयः सर्गः

गतेषु कालेष्वखिलार्यजातेः, सौभाग्यरूपोग्रमरीचिमाली ।
भ्रमन् भ्रमन् व्योम्नि समाजगाम समुन्नतेरुच्चतमे सुबिन्दौ ॥१॥

कुछ काल में समस्त आर्य्य जाति के भाग्य का सूर्य्य आकाश में भ्रमण करता करता उन्नति के सब से ऊँचे बिन्दु पर पहुँच गया ।

नासीत् समः कोऽपि जगत्सु तेषां,
ज्ञाने च शक्तौ च धने च कीर्तौ ।
अश्वत्थपत्राणि यथा समीराद्,
भयादकम्पन्त दिशश्चतस्रः ॥२॥

संसार में ज्ञान, शक्ति, धन या कीर्ति में उनके बराबर कोई नहीं था । जैसे पीपल के पत्ते हवा में काँपते हैं उसी प्रकार चारों दिशायें उनसे काँपती थी ।

यथा प्रचण्डस्य दिवाकरस्य विवर्धते मध्यदिने प्रतापः ।
प्रतापसूर्य्येण तथाऽर्य्यजातेः पूर्णप्रतापेण भुवि प्रतेपे ॥३॥

जैसे दोपहर को तेज सूर्य की चमक बढ़ती है इसी प्रकार आर्य जाति के प्रलय का सूर्य्य संसार भर में पूर्ण प्रताप के साथ चमकता था ।

न तज्जगद् गच्छति यन्न नित्यं,
न सा गतिर्यत्र रसैकभावः ।
भवाप्ययौ स्यन्दनचक्रतुल्यौ,
न हि स्थिरा काऽपि जगत्-प्रवृत्तिः ॥४॥

जो सदा चलता न रहे वह जगत् नहीं, जिसमें एकरसता हो वह गति नहीं। सृष्टि और प्रलय रथ के पहिये के समान हैं। जगत् की कोई प्रवृत्ति स्थिर नहीं है।

प्रभातकाले समुदेति सूर्य्यः
सायं तथाऽस्ताचलमभ्युपैति ।
महोदधावप्यतितुङ्गवीचि-
र्नीचैः पतत्येव यथाऽरचक्रम् ॥५॥

सूर्य्य प्रातःकाल में उदय होता है और सायंकाल को अस्त हो जाता है, समुद्र में ऊँची से ऊँची लहर पहिये के आरे के समान नीचे आ जाती है।

बभूवुरार्य्या जगतां सुपूज्या
वसूनि सर्वाणि च भुक्तवन्तः ।
त्रस्तेषु नष्टेषु परेषु सत्सु
न कोऽपि तान् रोद्धुमहो शशाक ॥६॥

आर्य लोग संसार भर के पूज्य हो गये, वे सब पदार्थों को

भोगते थे। उनके शत्रु डर गये या नष्ट हो गये। कोई उनको रोकने वाला न रहा।

प्रणालिकैषा जगति प्रसिद्धा
नराः स्वतंत्राः खलु तंत्रहीनाः।
सुखे निमग्ना व्यसनानुरक्ता-
स्त्यजन्त्यजस्रं निजधर्ममार्गम् ॥७॥

संसार में ऐसी प्रथा चली आती है कि स्वतंत्र लोग उच्छृङ्खल हो जाते हैं। सुख में डूब कर व्यसनों में रंग जाते हैं और अपने धर्म के मार्ग को छोड़ देते हैं।

धर्माच्च्युता द्वेषयुता भवन्ति,
द्वेषाच्च भेदोद्भव एव भावी।
भेदाद् ध्रुवं नश्यति संघशक्तिः,
संघस्यनाशोऽस्त्यसुखस्य मूलम् ॥८॥

धर्म से पतित होकर मनुष्य द्वेषी हो जाता है। द्वेष से भेद-भाव होता है। भेद-भाव से संघशक्ति नष्ट होती है। संघशक्ति का नाश दुःख का मूल है।

चलस्वभावा हि भवन्ति जीवा,
दोलायमाना किल तत्प्रवृत्तिः।
क्षयः कदाचिच्च कदाऽपि वृद्धि-
स्तेषामवस्था किल नैकरूपा ॥९॥

जीवों का स्वभाव चंचल होता है। उनकी प्रवृत्त चलायमान होती है। कभी उनका क्षय होता है कभी वृद्धि। उनकी अवस्था एक सी नहीं रहती।

समुद्भवत्येव यथा शरीरे
त्रिधातुदोषाद् बहुरोगजालम्।
तथा प्रमाद-व्यथितेषु हृत्सु
प्रजायते वैरविरोधभावः ॥१०॥

जैसे शरीर में वात, पित्त और कफ तीन दोषों के कारण अनेक रोग लग जाते हैं वैसे ही प्रमाद से पीड़ित हृदयों में वैर विरोध का भाव उत्पन्न हो जाता है।

विभूति-बाहुल्य-मदेन मत्ता
च्युता पथः सन्ततिरार्य्य जातेः।
यथैव पूर्णः किल पौर्णमास्यां,
क्रमात् कला मुञ्चति शीतरश्मिः ॥११॥

जैसे पूर्णमासी का पूर्ण चाँद क्रम से कलाओं को छोड़ देता है उसी प्रकार वैभव के मद से मस्त आर्यों की सन्तान अपने मार्ग से भ्रष्ट हो गई।

ईर्ष्यालवः सन्ति समस्तदेवा,
लोकोक्तिरेषा जगति प्रसिद्धा ।
कस्यापि संवृद्धिमवेक्ष्य तेषां
प्रकम्पते सुस्थिरसिंहपीठः ॥१२॥

लोक में यह प्रसिद्ध है कि सब देव ईर्ष्यालु होते है किसी की उन्नति देख कर उनका सिंहासन डोल जाता है।

यदा मनुष्येषु दधौ विधाता,
गुणाननेकान् शुभकामहेतून् ।
मध्ये कथंचित् प्रविवेश तेषा-
मीर्ष्याऽपि सौभाग्यविघातिनीव ॥१३॥

जब ईश्वर ने मनुष्य को अनेक अच्छे गुण दिये तो किसी प्रकार भाग्य को नष्ट करने वाली ईर्ष्या उनके बीच में आ घुसी।

दोषा मनुष्येषु भवन्त्यनेके
कार्य्याण्यनेकानि च तैः क्रियन्ते ।
समाज-विध्वंसक-वृत्तिमध्ये
परन्तु बीभत्सतमा हि सेर्ष्या ॥१४॥

मनुष्यों में अनेक दोष होते हैं और उनके बुरे कार्य भी होते

हैं। परन्तु समाज का नाश करनेवाली प्रवृत्तियों में सबसे भयानक ईर्ष्या है।

स्थाने प्रतीकारपरो हि लोकः,
प्रायः परान् हानिकरान् हिनस्ति।
परोन्नतिं वीक्ष्य करोति वैर-
मीर्ष्यास्वभावस्तु विना निमित्तम् ॥१५॥

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य बदला लेता है और हानि-कारक शत्रुओं का नाश करता है। परन्तु ईर्ष्यावाला मनुष्य विना कारण के भी पराई उन्नति को देखने मात्र से वैर करने लगता है।

वेदप्रचारस्त्विह धर्ममूलं,
त्यागः प्रचारस्य हि मूलमंत्रः।
त्यागस्य मूलं समुदारभावो,
मूलं प्रभोर्ज्ञानमुदारतायाः ॥१६॥

धर्म का मूल है वेद-प्रचार, प्रचार का मूल है त्याग भाव, त्याग का मूल है उदारता, और उदारता का मूल है ईश्वर का ज्ञान।

पुरातना ब्रह्मविदो बभूवु-
र्जगज्जनानां हितभावयुक्ताः।
अध्याप्य वेदानविशेषतस्ते
आलोकयामासुरशेषलोकान् ॥१७॥

पहले लोग ब्रह्म को जानते थे। संसार के लोगों का हित करते थे। सब को वेदों को पढ़ाकर समस्त संसार को विना अपवाद के प्रकाशमान करते थे।

फलोदयस्तस्य परिश्रमस्य
सम्पत्तिरूपेण समाजगाम।
नासीज्जगत्यामधिकस्तु तेभ्यः
समोऽपि कश्चिन् न हि दृश्यतेस्म ॥१८॥

उस परिश्रम का फल यह हुआ कि वे सम्पत्तिशाली हो गये। संसारभर में उनसे कोई बड़ा नहीं था। उनके बराबर भी कोई दिखाई नहीं देता था।

शेकुर्न सोढुं भवभूतिभार-
मार्य्येषु केचिन्मद-मान-मूढाः।
विस्मृत्य पुण्यां वत वेदवाणीं
स्वार्थस्य पंके कलुषे निपेतुः ॥१९॥

आर्य्यों में कुछ लोग मद और मान में पागल होकर उन्नति के भार को उठा न सके और पवित्र वेदवाणी को भुलाकर स्वार्थ के काले कीचड़ में जा फँसे॥

सोपानदण्डा अवलम्बिता ये
गच्छद्भिरूर्ध्वं पुरुषैः कराभ्याम् ।
तानेव दण्डाननुकार्य्यसिद्धं
पराङ्मुखीभूय नरास्त्यजन्ति ॥२०॥

जब लोग ऊपर चढ़ते हैं तो दोनों हाथों से सीढ़ी के दण्डों को पकड़ लेते हैं। परन्तु जब ऊपर पहुँच जाते हैं तो काम निकल जाने पर उन दण्डों की ओर से मुँह फेर लेते हैं और उनको छोड़ देते हैं।

इत्थं तिरस्कृत्य सुवेदमार्गं
कुमार्गमेवावलम्बिरे ते ।
गृहीतवन्तश्च मदात् प्रमादान्
मतानि लोकाः खलु कल्पितानि ॥२१॥

इसी प्रकार इन लोगों ने उन्नति होने के पश्चात् वेद के सुन्दर मार्ग को छोड़ दिया और कुमार्गी बन गये। मद और प्रमाद के नशे में कल्पित मतों को ग्रहण कर लिया ॥

आलस्य-नैष्कर्म्य हताश्च विज्ञा
वेदप्रचारे शिथिलीबभूवुः ।
अज्ञान-मेघाऽऽवृत-वेदभानौ
प्रचालिता वेदविरुद्ध-धर्माः ॥२२॥

विद्वान् लोग आलस और बेकारी से हत हो गये और वेदप्रचार में शिथिल पड़ गये। जब वेद का सूर्य अज्ञान के बादलों ने घेर लिया तो वेदविरुद्ध मत प्रचलित हो गये।

इत्थं विभक्ता सकलार्यजाति-
र्द्विधा त्रिधा वा शकलीकृताऽभूत्।
सुराऽसुराणां कलहेन दूना
कुपुत्र-मातेव विषादमाप ॥२३॥

इस प्रकार आर्य्य जाति के दो तीन टुकड़े हो गये। सुर असुरों की लड़ाई से खिन्न होकर जाति उसी प्रकार दुःखी हो गई जैसे कपूत की माँ।

वृद्धिं गता वेदविरुद्धभावा
वेदोक्तकर्माणि च विस्मृतानि।
जनाः शिखासूत्रमुचो विचेरु-
र्वृषा अतंत्रा इव भग्नबन्धाः ॥२४॥

वेदविरोधी भाव बढ़ गये। वैदोक्त कर्मों को लोग भूल गये। चोटी और जनेऊ को छोड़कर लोग ऐसे विचरने लगे जैसे खूंटा तुड़ा कर बैल मुँह उठाये फिरा करते हैं।

यज्ञा विलुप्ताश्च सुराः प्रसुप्ता
अस्तं गतो वेदमरीचिमाली ।
नक्तंचराणां च सुरेतराणां
बभूव सर्वत्र महाधिपत्यम् ॥२५॥

यज्ञों का लोप हो गया । ब्राह्मण सो गये । वेदों का सूर्य अस्त हो गया । असुर निशाचरों का सब जगह आधिपत्य हो गया ।

अनादृताः सोमसदो ह्यभूवन्
समादरं प्राप च मद्यसेवा ।
हवींषि गव्यान्वितनिर्मलानि
जातानि वै शोणितमिश्रितानि ॥२६॥

सोम यज्ञ करनेवालों का अनादर हुआ । शराब का आदर होने लगा । शुद्ध घी आदि की निर्मल हवियों में रुधिर मिल गया ॥

यज्ञस्तु वेदेऽध्वरसंज्ञकोऽस्ति
विवर्जितो हिंसनकर्मवृत्तेः ।
तेष्वेव यज्ञेषु बधः पशूनां
प्रवर्तितः स्वार्थरतैरदेवैः ॥२७॥

वेद में यज्ञ को अध्वर कहते हैं । अध्वर का अर्थ है हिंसा न करना । उन्हीं यज्ञों में स्वार्थी असुरों ने पशु-वध करना आरम्भ कर दिया ।

पयांसि माधुर्ययुतानि धेनो-
र्व्रजन्ति सर्पस्य मुखे विषत्वम् ।
तथैव वेदामृतदुग्धधारा
गत्वा कुपात्रं कलुषीबभूव ॥२८॥

गाय का मीठा दूध साँप के मुख में जाकर विष हो जाता है। इसी प्रकार वेद रूपी अमृत की दूध की धारा कुपात्र में पड़कर गंदी हो गई।

मिषेण यज्ञस्य जघान जीवान्
मिषेण पुण्यस्य चकार पापम् ।
प्रभामिषेणाशु तमस्ततान
दधौ पिशाचस्य कुवृत्तिमार्य्यः ॥२९॥

यज्ञ के बहाने जीवों को मारने लगा। पुण्य के बहाने से पाप करने लगा, प्रकाश के बहाने अंधकार फैलाने लगा। इस प्रकार आर्य ने पिशाच की बुरी वृत्ति ग्रहण करली।

यदा बभूव श्रुतिमार्गगामी
धर्मच्युतः पापरतोऽल्पदर्शी ।
वेदेषु धर्मे परमेश्वरे वा
श्रद्धा नराणां शिथिलीबभूव ॥३०॥

जब वेदमार्ग पर चलनेवाले धर्म से पतित, पापी और अल्प-

दर्शी हो गये तो मनुष्यों की श्रद्धा वेद, धर्म और ईश्वर में कम पड़ गई।

यज्ञेषु हिंसामनुदृश्य लोका
बीभत्सरूपामुत नारकीयाम्।
प्रसाधिता धर्मधुरन्धरैश्च
ह्यास्तिक्यभावांश्च शुभानमुञ्चन् ॥३१॥

जब लोगों ने देखा कि बड़े बड़े पंडित लोग यज्ञ में बड़ी भयानक हिंसा करते हैं तो उन्होंने शुभ आस्तिक्य के भाव छोड़ दिये अर्थात् वेदों में अश्रद्धा हो गई।

ऋगादिवेदा रचिताः समग्रा
भाण्डैस्तथाधूर्तनिशाचरैश्च।
इत्थं समालोच्य नराः प्रगल्भा,
नास्तिक्यभावान् जगति प्रतेनुः ॥३२॥

कुछ उद्दण्ड लोगों ने कहना आरम्भ किया कि ऋग्वेद आदि को भांड, धूर्त और राक्षसों ने बनाया है। ऐसा कहकर वे जगत् में वेद विरोधी भाव फैलाने लगे।

न कोऽपि कर्त्ता नहि कोऽपि धर्ता
विश्वस्य गोप्ता न शिवो न विष्णुः।
न कर्मणां कोऽपि फलस्य दाता
स्वभावतो याति जगत्-प्रवाहः ॥३३॥

वे ऐसा कहने लगे कि जगत् का कोई बनाने या पालने वाला शिव या विष्णु नहीं है। न कोई कर्मों का फल देता है। जगद् का प्रवाह स्वभाव से ही चलता है।

देहेतरःकोऽपि न जीवरूपः,
करोति कर्माणि फलं च भुङ्क्ते।
न कोऽपि धर्मो न च कोऽप्यधर्मो
जडेतरः कोऽपि न चित्स्वरूपः ॥३४॥

शरीर के अतिरिक्त कोई ऐसा जीव नहीं है जो कर्म करे या फल भोगे। न कुछ धर्म है न अधर्म। जड़ से अतिरिक्त कोई चेतन सत्ता नहीं।

जलानिलेलानलसंज्ञकानि
चत्वारि भूतानि मिथो मिलित्वा।
स्वभाव संजातगुणाननेकान्
प्रपंचरूपेण विकासयन्ति ॥३५॥

जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि नामक चार भूत मिलकर संसार में स्वभाव से उत्पन्न हुये गुणों का विकास करते रहते हैं।

स्वभावजं जन्म निसर्गजोऽन्तः,
स्वभावजान्येव च जीवनानि।
सुखस्य दुःखस्य च हेतुरेकं
स्वभावमात्रं न तु कश्चिदन्यः ॥३६॥

स्वभाव से जन्म होता है, स्वभाव से मृत्यु। स्वभाव से ही जीवन उत्पन्न होते हैं। स्वभाव ही एक दुःखों या सुखों का हेतु है। अन्य कोई चेतन सत्ता नहीं।

न क्वापि पापं न च वाऽथ पुण्य-
ममुत्रयानं खलु वंचकोक्तिः।
ततं हि लोकैरिहधर्मजालं
स्वजीविकार्थं परवंचनार्थम् ॥३७॥

पाप या पुण्य कुछ नहीं। परलोकगमन भी धोखा है। संसार में लोगों ने अपनी जीविका और दूसरों को ठगने के लिये धम का ढोंग बना रक्खा है।

सुखेन जीवेदिह देहधारी
लोकात् परस्मात् तु विमुक्तचिन्तः।
प्रत्यक्षलाभं न भयात् परोक्षात्
त्यजेत् कदाचिद्धि विचारशीलः ॥३८॥

मनुष्य को परलोक की चिन्ता छोड़कर संसार में सुख से रहना चाहिये। बुद्धिमान लोग परोक्ष के भय से प्रत्यक्ष के लाभ को नहीं छोड़ते।

त्यागस्तपः कर्म दमश्च पूजा
देवस्य कस्यापि च कल्पितस्य ।
सुखेच्छुकेभ्यो जगतां नरेभ्यः
कल्याणहेतुर्हि कथं भवेयुः ॥३९॥

त्याग, तपकर्म, दम, किसी कल्पित देवता की पूजा संसार में सुख चाहने वाले लोगों के कल्याण का हेतु कैसे हो सकती है ?

एतानि चार्वाकनिरूपितानि,
बहूनि नास्तिक्यमतानि देशे ।
अवेदविद्भिर्भ्रमजालबद्धैः
प्रचारितानि श्रुतिरोधकानि ॥४०॥

इस प्रकार के चारवाक निरूपित बहुत से वेदविरोधी नास्तिक मत देश में वेद न जाननेवाले भ्रमजाल में फंसे हुये लोगों ने प्रचलित कर दिये ।

अवैदिका वैदिकधर्मवन्तो
द्विधा बभूवुः खलु भारतीयाः ।
द्वयोश्च मध्ये दलयोरजस्र-
मुपस्थितो युद्धकरः प्रसङ्गः ॥४१॥

भारतवासियों के दो दल हो गये । एक अवैदिक, दूसरे वैदिक । दोनों के बीच निरन्तर लड़ाइयां होने लगीं ।

न वैदिका वेदरता अभूवन्
नाम्नैव तेषां खलु वैदिकत्वम् ।
प्रथा अनेकाः श्रुतिभावशून्या
अधर्मयुक्ता अवलम्बितास्तैः ॥४२॥

वैदिक लोग भी नाम के वैदिक थे वेदों पर नहीं चलते थे। वेद और धर्म के विरुद्ध अनेक प्रथायें उन में चल पड़ी थीं।

ताभ्यः प्रथाभ्यः खलु खिन्नचित्तै-
र्विहाय वेदोदितधर्ममार्गम् ।
अवैदिकैः शोभनकामनाभि-
र्मतानि नव्यानि समर्थितानि ॥४३॥

उन प्रथाओं से खिन्न चित्त होकर वेदोक्त धर्म को छोड़कर अवैदिक लोगों ने उत्तम भावों से प्रेरित होकर नये नये मतों को बना डाला।

मतिर्विभिन्नाऽथ गतिर्विभिन्ना
विभिन्नभावाश्च विभिन्नधर्माः ।
प्रथा विभिन्नाश्च कथा विभिन्ना
विभिन्नपूज्याश्च विभिन्नपूजाः ॥४४॥

मति भिन्न, गति भिन्न, भाव भिन्न, धर्म भिन्न, प्रथायें भिन्न, कथायें भिन्न, ईश्वर भिन्न और पूजायें भिन्न।

एकोहि देवो जगतां विधाता
दधाति नामानि बहूनि वेदे ।
स एव विष्णुश्च स एव रुद्रः,
स एव सूर्य्यश्च स एव चन्द्रः ॥४५॥

वेद में लिखा है कि संसार का विधाता एक ही है । उसके नाम अलग अलग हैं जैसे विष्णु, रुद्र, सूर्य्य या चन्द्र सभी नाम उसी एक ईश्वर के हैं । (देखो ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

वदन्ति विप्रा बहुधा सदेक-
मिति प्रसिद्धं श्रुतिवाक्यमध्ये ।
उपास्यदेवस्य किलैकताहि
मनुष्यजातौ विदधाति साम्यम् ॥४६॥

वेद (ऋग्वेद) की प्रसिद्ध उक्ति है कि सत् एक है, विद्वान लोग उस को भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं । केवल एक ईश्वर की पूजा ही मनुष्य जाति में समता उत्पन्न कर सकती है ।

परन्तु संत्यज्य तदेव साम्य-
मुपास्यदेवा बहवो बभूवुः ।
शिवे च शक्तौ च हरौ च रुद्रे
विभिन्नभावं व्यदधुर्विमूढाः ॥४७॥

परन्तु उस समता को छोड़कर अनेक उपास्य हो गये। मूर्खों ने समझ लिया कि शिव और है शक्ति और, हरि और है रुद्र और।

मिषेण वेदस्य विहाय वेदं
पुराणकालेऽरचयन् मनुष्याः।
बहून् निबन्धांश्च पुराणसंज्ञान्
क्षुद्राशयान् वा भ्रमजालमूलान् ॥४८॥

वेदों के बहाने वेदों को छोड़कर पुराण काल में लोगों ने पुराण नामक बहुत से क्षुद्राशय और भ्रम जाल मूलक निबन्ध रचना डाले।

शिवस्य भक्ता अरयो हि विष्णो-
र्विष्णोश्च भक्ताः शिवशत्रुतान्धाः।
भेदे प्रभेदे च जना विभक्ता
बभूव पूजापि च वैरमूलम् ॥४९॥

शिव के भक्त विष्णु के शत्रु हो गये। विष्णु के भक्त शिव के शत्रु बन गये। लोगों में भेद प्रभेद बढ़ गए। पूजा भी वैर का कारण हो गई।

उपास्यदेवेषु यदार्य्यजाति-
र्भिन्नेषु भिन्नेषु गता विभागम् ।
शैवाश्च शाक्ता उत वैष्णवा वा
प्रादुर्बभूवुः शत सम्प्रदायाः ॥५०॥

जब आर्य्य जाति के अनेक उपास्य देव हो गये तो शैव, शाक्त और वैष्णव सैकड़ों सम्प्रदाय हो गये ।

देवस्य देवे रिपुभाव आसी-
दुपासकेषूग्रविरोधभावः ।
स्वर्गे न शान्तिर्न च मर्त्यलोके,
मर्त्या अमर्त्याश्च समा अभूवन् ॥५१॥

एक देवता दूसरे देवता का शत्रु हो गया । उपासकों में बड़ा विरोध हो गया । न स्वर्ग में शान्ति न मर्त्य लोक में । मर्त्य और अमर्त्य एक से हो गये ।

इयं दशासीदिहवैदिकानां
धर्मध्वजानां हतसत्क्रियाणाम् ।
अवेद्य वेदस्य निरर्थकत्वं
ध्यानं जनानां गतमन्यथाऽभूत् ॥५२॥

जब वेद मानने वाले धर्मध्वज और सत्क्रिया हीन लोगों की यह दशा हो गई तो वेदों को निरर्थक सकझकर लोगों ने अपना ध्यान दूसरी ओर फेर लिया।

ईशं तिरस्कृत्य विहाय वेदं
बौद्धाश्च जैनाश्च मतान्तराणि।
स्वबुद्धिमाश्रित्य हिते जनानां
प्रचारयामासुरवैदिकानि ॥५३॥

ईश्वर का निषेध करके तथा वेदों को छोड़कर बौद्ध और जैन आदि अपनी बुद्धि के आश्रित अवैदिक मतों का लोगों के हित के लिये प्रचार करने लगे।

यज्ञेषु हिंसा समवेक्ष्य लोका
दयाद्रवीभूतहृदो बभूवुः।
नास्तिक्यदोषो न विचारकैस्तै-
बौंद्धेषु जैनेषु मतेषु दृष्टः ॥५४॥

यज्ञों में हिंसा देखकर लोगों के हृदय दया से द्रवी भूत हो गये। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्मों के नास्तिकता रूप दोष पर कुछ विचार नहीं किया।

इत्थं हि नो भारतवर्षदेशे
प्रमादतो वेदविचारकाणाम् ।
ह्रासं गतो वैदिकधर्मचन्द्रो
वृद्धिं च नास्तिक्यतमांस्यवापुः ॥५५॥

उसी प्रकार हमारे भरतवर्ष देश में वेद विचार वालों के प्रमाद से वेद का चाँद छिप गया और नास्तिकता का अंधेरा छा गया ।

इत्यार्योदये वैदिक-धर्म ह्रासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

अथ तृतीयः सर्गः

पुरा सुकर्माजितशान्तिसम्पदं
यशोधनैर्धर्मपरैः सुशासितम् ।
सुपुष्टिमत्पुष्पफलान्नवारिभि-
रवाप चत्वारि फलानि भारतम् ॥१॥

पुराने समय में भारतवर्ष को चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त थे। अच्छे कर्मों से शान्ति रूपी सम्पदा प्राप्त हुई थी। धर्मात्मा यशस्वी राजाओं का राज्य था। फल फूल अन्न जल पुष्टि कारक थे।

सुकेन्द्रिता राजनि चक्रवर्त्तिनि,
सुतंत्रिता वेदविधानविन्नरैः ।
सुरक्षिता वीरभटै धनुर्धरै-
रराजभुव्यार्य्यसुराज्यपद्धतिः ॥२॥

चक्रवर्त्ती राजा में केन्द्रित, वैदिक विधान को जानने वाले विद्वानों द्वारा तंत्रित, धनुर्धारी वीरों द्वारा सुरक्षित आर्य्यों की सुराज्य-पद्धति संसार भर में विख्यात थी।

न शंकिताऽऽसीज् जनता जनाधिपे
न दुद्रुहुर्लोकपतीन् प्रजाजनाः ।
सुतो जनित्रे च पितेव सूनुना
न्यूषुर्विशश्चैव विशांपतिः सदा ॥३॥

प्रजा राजा पर शंका नहीं करती थी । लोग राजों से द्रोह नहीं करते थे । प्रजागण और राजे प्रेम से रहते थे जैसे पिता के लिये पुत्र या पुत्र के लिये पिता ।

अध्यात्मविद्याकृतसूक्ष्मदृष्टिभि-
र्योगक्रियाऽभ्यासनिरुद्धवृत्तिभिः ।
वेदोक्तयज्ञाप्तनिकामवृष्टिभि-
रकारि वासः किल देशकृष्टिभिः ॥४॥

(नोट—कृष्टयः मनुष्यनामसु पठितम्-निरुक्त २।३।७)

अध्यात्मविद्या से जिन की दृष्टि सूक्ष्म हो गई है, योगाभ्यास से जिनकी वृत्तियां निरुद्ध हो गई हैं, वेदानुकूल यज्ञ करने से जिनके खेतों में इच्छित समय पर वर्षा हुआ करती है ऐसे विकसित मनुष्यों का भारतवर्ष में निवास था ।

न मांसभक्षी न च मद्यपः क्वचित्
न हिंसको वा न च कोऽपि वंचकः ।
स्तेनः कदर्यो न च पापजीवनो
न स्वैरिणी स्वैरिजनः कुतो भवेत् ॥५॥

कोई न मांस खाता था न शराब पीता था न हिंसक था न ठग। न चोर, न लालची, न पापी। कोई व्याभिचारिणी स्त्री न थी। व्याभिचारी पुरुष तो होता कैसे ?

प्रतिप्रदेशं च यदाऽऽर्य्यसंस्कृति-
दूरे तथारात् प्रससार भूतले।
भद्रं समासाद्य जना अदर्शयन्
श्रद्धां च भक्तिं च समस्तभारते ॥६॥

जब आर्य्य संस्कृति दूर और समीप भूमण्डल के सभी देशों में फैल गई तो लोगों ने उसको कल्याणकारी समझकर भारतवर्ष भर के लिये श्रद्धा और भक्ति का प्रदर्शन किया।

वटस्य दूरात् परिलक्ष्य शीतलां
छायां समायान्ति मुदान्विता द्विजाः।
फलानि खादन्ति वसन्ति कोटरे
प्रमोदयुक्ता गमयन्ति जीवनम् ॥७॥

दूर से बटवृक्ष की शीतल छाया को देखकर पक्षीगण हर्ष से आते हैं फल खाते हैं, कोटर में रहते हैं और सुख से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

एवं महत्त्वं सुविचार्य संस्कृते-
द्विजाः सुबोधाश्च विदेशवासिनः ।
शिक्षां ग्रहीतुं भुवि वन्द्यभारतात्
समेयुरत्रैव विनीतशिष्यवत् ॥८॥

इसी प्रकार संस्कृति की महत्ता को विचार करके विदेश के बुद्धिमान् ब्राह्मण संसार भर के स्तुत्य भारत से शिक्षा ग्रहण करने के लिये विनीत शिष्य के समान यहाँ आते थे।

समत्वमाचारविचारजीवने
सर्वत्र संस्थापयितुं समुत्सुकाः ।
प्रभुत्वमार्य्याधिपचक्रवर्त्तिनो
विदेशपालाः स्वयमेव मेनिरे ॥ ९ ॥

आचार विचार और जीवन में सब स्थानों पर एक सी समता हो जाय इस इच्छा से विदेश के राजा आर्य्यावर्त के चक्रवर्ती राजा का आधिपत्य स्वयं ही मान लेते थे।

निःस्वार्थभावेन चकार शासनं
विश्वस्यशान्त्यै यततेस्म सर्वदा ।
संस्थापयामास समन्वयं भुवि,
न चक्रवर्त्ती विततान दासताम् ॥ १० ॥

स्वार्थ वश शासन नहीं करता था विश्व की शान्ति के लिये सदा यत्नशील था। संसार भर में समन्वय स्थापित करता था। इस प्रकार चक्रवर्त्ती राजा दासता नहीं फैलाता था।

अदीनभावाःशरदःशतं वयं
स्यामेति वाक्यं खलु याजुषश्रुतौ।
तस्मान्न सम्राडसहिष्ट दासतां
स्वातंत्र्यमूलार्य्यसुराज्यपद्धतिः ॥ ११ ॥

यजुर्वेद में लिखा है कि हम सौ वर्ष तक अदीन होकर जियें। इसलिये सम्राट् दासता का सहन नहीं करता था। आर्य्यों की राज पद्धति का मूलमंत्र यह था कि सब को स्वतंत्रता प्राप्त हो।

दासा बभूवुर्नहि चक्रवर्त्तिनो
देशेष्ववन्यां लघुषु क्षितीश्वराः।
स्वतंत्रभावेन समे समाप्नुवन्
निजेषु कार्य्येषु समामधिक्रियाम् ॥ १२ ॥

भूमण्डल के छोटे छोटे देशों के राजे आर्य्यावर्त्त के चक्रवर्त्ती राजा के दास नहीं थे वे स्वतत्रभाव से बराबर बराबर अपने अपने कार्य्यों में समान अधिकार रखते थे।

न स्यात् पृथिव्यामसमानता क्वचिद्
धर्मच्युताःस्युर्जनना दुराग्रहात् ।
आसीदिदं मुख्यतमं प्रयोजनं
अखण्ड-राष्ट्राधिपचक्रवर्त्तिनः ॥ १३ ॥

अखण्डराष्ट्र हो। उसका एक ही चक्रवर्त्तीराजा हो। इस का मुख्य प्रयोजन यही था कि पृथ्वी पर असमानता न होने पाये और दुराग्रही लोग धर्म से पतित न हो जावें।

अन्तःस्थभासा विबभौ प्रजापतिः
स्वभां प्रजाभ्यः प्रददौ च भानुवत् ।
नासीदविद्वान् नच कुत्सितप्रिय-
स्तमस्यपेते च सुशासने कृते ॥ १४ ॥

राजा अपने आन्तरिक प्रकाश से चमकता था और सूर्य के समान प्रजा को अपने ही प्रकाश से प्रकाशित करता था। अन्धकार के दूर होने और अच्छे शासन के होने से न तो कोई अविद्वान् होता था न किसी को बुराई प्रिय होती थी।

यदा तु धर्मस्य बभूव हीनता
धर्मस्य केन्द्रे प्रमुखेऽपि भारते ।
बबन्ध लोकःस्वमनःकुवर्त्मनि,
समाजराष्ट्रे शिथिलीबभूवतुः ॥ १५ ॥

जब धर्म के प्रमुख केन्द्र भारत में ही धर्म की हीनता हो गयी तो लोग बुरे मार्ग पर चलने लगे। समाज का बन्धन और राष्ट्र का बन्धन दोनों ढीले पड़गये।

अङ्गीचकार श्रुतिहीनभूपतिः
शास्त्रोक्तनीतिं न परम्परागताम्।
आज्ञाममन्यन्त न चक्रवर्त्तिनः
स्वाधीनता-प्रेरित-मण्डलेश्वराः ॥ १६ ॥

राजा वेद विरुद्ध हो गया। उसने परम्परा गत शास्त्र की नीति छोड़ दी। स्वाधीन राजों ने चक्रवर्त्ती राजा का कहना न माना।

विचृत्य सर्वं खलु धर्मबन्धनं
निरंकुशा अभवन् शासका जनाः।
विच्छिन्नतां प्राप च राष्ट्रसंगति-
र्विकृत्तसूत्रा मणिमालिका यथा ॥१७॥

सब धर्म बन्धनों को तोड़कर राजे लोग निरंकुश हो गये। जैसे धागे के टूटने से माला के मणि विखिर जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र का संगठन तितर वितर हो गया।

मनुष्यपालैश्च विदेशवासिभि-
रभञ्जि बन्धः खलु देशभारतात् ।
तेषु प्रदेशेषु च वेदसंस्कृति-
र्विच्छिन्नमूलाऽऽप लतेव शुष्कताम् ॥१८॥

विदेश के राजों ने भारत से सम्बन्ध तोड़ दिया। और जैसे जड़ कट जाने से लता सूख जाती है उसी प्रकार उन देशों में वैदिक संस्कृति मुरझा गई।

प्रादुर्बभूवु र्बहुसंख्यराक्षसा
जीवान् समघ्नन्नपिबन् सुरां च ये ।
आर्येषु सर्वेषु च कौणपेषु च
रणप्रसङ्गः सततं समुत्थितः ॥१९॥

बहुत से ऐसे राक्षस उत्पन्न हो गये जो जीवों को मारते और शराब पीते थे! आर्यों में और इन राक्षसों में नित्य युद्ध छिड़ने लगा।

कदाचिदार्य्या रजनीचरः क्वचिद्
बलानुसारेण पराभवं गताः ।
पराजितं धर्ममवेक्ष्य मानवाः
श्रद्धां न सत्याचरणे समादधुः ॥२०॥

बल के अनुसार कभी आर्य्य हार गये और कभी राक्षस। लोगों ने धर्म को हारा हुआ देखकर सत्याचरण पर श्रद्धा करनी छोड़ दी।

जगन्मनोवृत्तिमनार्य्यताऽविश-
दार्य्या अनार्य्याश्च समं व्यवाहरन्।
विभाजितान्यार्य्यकुलान्यनेकधा
बन्धोश्च बन्धू रुधिरं पपौ तदा ॥२१॥

लोगों के मन में अनार्य्यभाव घुस गया। आर्य्यों और अनार्यों के एक से आचरण हो गये। आर्य्य कुलों के अनेक टुकड़े हो गये। भाई के खून का भाई प्यासा हो गया।

निधाय पाणौ परशुं प्रवृत्तिमान्
क्षत्रस्य नाशे जमदग्निवंशजः।
छिन्दीत बाहू यदि मस्तकं स्वयं
कथं तदा जीवनसाधनं भवेत् ॥२२॥

परशुराम ने हाथ में परशु लेकर क्षत्रियों का नाश करना आरम्भ किया। भला जब मस्तक ही भुजाओं को काटने लगे तो जीवन कैसे चले।

४

यो ब्रह्मचारी शतधा महीमिमां
राजन्यशून्यामकरोत् प्रकोपतः ।
न तस्य विप्रस्य कथं महामुने-
र्देशे भवेन्मत्स्य-नय-प्रचारता ॥२३॥

जिस ब्रह्मचारी ने कोप करके सौ बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य कर दिया उस महामुनि ब्राह्मण के देश में अराजकता (जैसे समुद्र में मछलियों का राज होता है) कैसे न फैलती।

तस्यैव दोषस्य निवृत्तिहेतवे
चकार यत्नं रघुवंशकौस्तुभः ।
विधाय धारां परशोश्च कुण्ठितां
निराकरोद् द्वेषकरीं कुभावनाम् ॥२४॥

उसी दोष की निवृत्ति के लिये श्री रामचन्द्र ने यत्न किया और परशुराम के परशु की धार को कुण्ठित करके द्वेष की भावना को दूर कर दिया।

ब्राह्मीं महाशक्तिमनर्थवारिणीं
क्षात्रेण संयोज्य बलेन बुद्धिमान् ।
विजित्य लंकेशमखण्डभारतं
संस्थापयामास पुनश्च राघवः ॥ २५ ॥

बुद्धिमान श्री रामचन्द्र जी ने अनर्थ को दूर करने वाली बड़ी ब्रह्म शक्ति को क्षात्र बल के साथ मिलाकर लंका के राजा रावण को जीत कर फिर अखण्ड भारत की स्थापना की।

बहूनि वर्षाणि यथाविधि प्रजा
जुगोप भूपं, मनुजाँश्च भूपतिः।
सुनीतिमन्तश्च षडीतिवर्जिता
मिथः सुराज्यस्य सुखानि लेभिरे ॥ २६ ॥

बहुत वर्षों तक विधिपूर्वक प्रजा राजा की और राजा प्रजा की रक्षा करते रहे। उनकी नीति अच्छी थी और वे छः दुःखों से मुक्त थे। इस प्रकार राजा और प्रजा दोनों सुराज के सुख को भोगते थे। छः ईतियां यह हैं अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टीढ़ी दल, तोते, विदेशी राजा का आक्रमण।

परन्तु पापस्य पुनश्च कालिमा
सितानि राज्ञां सुयशांस्यदूषयत्।
नराधिपा द्यूतरता मदान्विता
अयापयन्नर्थविहीनजीवनम् ॥ २७ ॥

लेकिन पाप की कालिमा ने फिर राजों के सफेद यश को दूषित कर दिया। राजे ज्वारी और मदमत्त होकर निरर्थक जीवन व्यतीत करने लगे।

सुखस्य मूलं किल कर्म्म शोभनं
प्रभुर्यथाकर्म फलं ददाति नः ।
द्यूतं तु वै कर्मफलस्य खण्डनं
द्यूतं च नास्तिक्यमुभे सहोदरे ॥ २८ ॥

सुख का मूल है शुभ कर्म ! ईश्वर हमको कर्मों के अनुसार फल देता है, जुआ खेलना मानों कर्म फल के सिद्धान्त का खण्डन करना है, जुआ और नास्तिकता सगे भाई हैं ।

सभां तु तत्याज तदैव लज्जया
धर्मः स्वनाम्ना कथितस्य भूपतेः ।
द्यूत-प्रभुत्वेन यदा ददर्श स
च्युतान् सुमार्गात् कुमतीन् सभासदः ॥ २९ ॥

धर्म ने जब देखा कि मेरे नामवाले धर्मराज युधिष्ठिर की सभा में कुमति सभासद जुए के प्रभाव से शुभमार्ग से पतित होगये तो उसने (अर्थात् धर्म ने) लज्जावश धर्मराज की सभा को छोड़ दिया ।

यथा मनोजेन पराजितां स्त्रियं
मुञ्चन्ति लज्जा च भयं च नम्रता ।
द्यूत-प्रवृत्त्या विकृतान् तथा नरान्
त्यजन्ति भद्राणि, गुणाश्च संपदः ॥ ३० ॥

जैसे काम की सताई स्त्री को लज्जा, भय और नम्रता नहीं रहती उसी प्रकार जुए की लत में पड़े हुये लोगों से भलाइयाँ, गुण तथा सम्पत्ति भाग जाते हैं।

अहो कथं कर्मविपाकचित्रता
यद्धर्मराजस्य सभासु नित्यशः।
द्यूत-प्रथा वंश-विनाश-कारिणी
मनोविनोदस्य बभूव साधनम् ॥ ३१ ॥

कर्मविपाक की विचित्रता तो देखिये कि धर्मराज युधिष्ठिर की सभाओं में नित्य वंश को नाश करने वाली जुये की प्रथा मन बहलाने का साधन बन गई।

पाण्डोस्तनूजा धृतराष्ट्र सूनवः
पितामहैकत्वयुजःकुरूद्वहाः।
पस्पर्धिरेऽन्योन्यविनाशतत्परा,
जगाम नाशं च समग्रभारतम् ॥ ३२ ॥

पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि। यह दोनों कुरुवंशी थे, इन के पितामह एक ही थे, यह एक दूसरे के नाश में तत्पर हुये। और समस्त भारत नष्ट होगया।

युगे तदा द्वापरनामधारिणि
विस्मृत्य वेदानपि वेदमानिनः ।
वेदानधीयुर्न, निजे न जीवने
वेदोक्तकर्माणि मुदा समाचरन् ॥ ३३ ॥

द्वापर युग में अपने को वेदानुयायी कहलाने वाले भी वेदों को भूल गये, न वेद पढ़ते थे न जीवन में वैदिककर्म करते थे ।

तथापि तेषां हृदयेषु काचन
श्रद्धाऽऽस वेदेष्वनिरुक्तरूपिणी ।
यदानुकूल्येन समाज-संगतिः
किंचित् कथंचिन्न गता विकारिताम् ॥ ३४ ॥

तो भी उनके हृदयों में वेदों के लिए कुछ धुंधली सी श्रद्धा थी जिसकी अनुकूलता से समाज का ढांचा कुछ कुछ जैसे तैसे बिगड़ा नहीं ।

परं महाभारतनाम्नि विग्रहे
समस्तराज्यं विकृतिं समाययौ ।
न क्षत्रियः कोऽपि न कोऽपि भूसुरो
गोप्तुं हि शिष्टः खलु वेदसंस्कृतिम् ॥ ३५ ॥

लेकिन महाभारत के युद्ध में सब राज बिगड़ गया और वेद की संस्कृति की रक्षा के लिये न कोई क्षत्रिय बचा न ब्राह्मण।

द्रोणादयः शस्त्रविदो धनुर्धरा,
भीष्मादयो युद्धकलाविशारदाः।
कृष्णादयो नीतिरहस्यकोविदा
गतास् , तथा सर्वगुणाः क्रमानुगाः ॥ ३६ ॥

द्रोणाचार्य आदि धनुर्धारी, भीष्म पितामह आदि युद्धकला प्रवीण, कृष्ण आदि नीतिज्ञ नष्ट हो गये और उनके साथ ही क्रमानुसार उनके गुण भी लोप हो गये।

जैत्रं समापुर्हि युधिष्ठिरादयः
पराजयं कौरवपक्षिणस्तथा।
एको विजेता च पराजितोऽपरो
द्विधाऽपि राष्ट्रस्य पराजयो ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर आदि जीत गये। कौरव पक्ष हार गया। एक की जीत हुई, दूसरे की हार हुई। लेकिन राष्ट्र की तो दोनों प्रकार से हार ही हुई।

स्वराज्यलाभेन ननन्द पाण्डवः
स्वराज्यनाशेन शुशोच कौरवः ।
माता द्वयोर्भारतवर्षमेदिनी,
रुरोद चक्रन्द मुमूर्च्छ पीडया ॥ ३८ ॥

पाण्डव को स्वराज्य मिलने से आनन्द हुआ । कौरव को स्वराज्य छिनने से शोक हुआ । परन्तु दोनों की माता भारतभूमि तो पीड़ा से रोने चिल्लाने और मूर्च्छित होने लगी ।

जहास राजन्यबलं शनैःशनै-
रन्तस्थदोषैः खलु यादवा हताः ।
कृष्णस्य यत्नाश्च न लेभिरे फलं,
शशाक रोद्धुं पतनं न कश्चन ॥ ३९ ॥

शनैः २ क्षत्रियों का बल क्षीण हो गया । आन्तरिक दोषों के कारण यदुवंशी मारे गये । श्री कृष्ण महाराज के प्रयत्न सफल न हो सके । कोई अधःपतन को रोक न सका ।

यः पात आरभ्यत भारताहवे
दुर्योधनादि-प्रतिगामिनीतितः ।
अद्यापि नाशाम्यदमुष्यसंतति-
र्नाद्यापि देशो लभतेस्म सुस्थितिम् ॥ ४० ॥

दुर्योधन आदि की कुनीति के कारण महाभारत के युद्ध में जो पतन आरंभ हुआ उसका सिलसिला अभी तक शान्त नहीं हो पाया और आज भी देश की स्थिति ठीक नहीं हो पाई।

यूनान देशस्य सिकन्दरो महान्
विजित्य पार्श्वस्थ समग्रभूपतीन्।
बलाद् ग्रहीतुं भरतस्य मेदिनीं
समाययावत्र विशालसेनया ॥ ४१ ॥

यूनान देश का राजा बड़ा सिकन्दर सब पड़ोसी राजों को हराकर बहुत बड़ी सेना लेकर भारतवर्ष को जीतने यहां आ गया।

पुरुं पराभूय च मण्लेश्वरं
सीमान्तभागस्य हि पश्चिमे तटे।
धनैश्च धान्यैश्च सुपूरितावनौ
प्राच्यां कुदृष्टिं नृपतिर्न्यपातयत् ॥४२ ॥

सीमाप्रान्त के पश्चिमी तट पर वहाँ के राजा पुरु को हरा कर सिकन्दर ने पूर्व की ओर हरीभरी भूमि पर अपनी कुदृष्टि डाली।

आसीत् तदानीं मगधस्य भूपतिः
शत्रुंदमानां धुरि वीरवत्तमः।
यश्चन्द्रगुप्ताभिधया प्रतीतो
जुगोप देशं त्रिविधादुपद्रवात् ॥४३॥

उस समय मगध देश में एक अत्यंत बलशाली शत्रुओं का दमन करने वाला चन्द्रगुप्त नाम का राजा राज करता था वह देश की तीन तापों से रक्षा करता था ।

शुश्राव मौर्यस्य कथा सिकन्दरो
यूनानसेना च बभूव शंकिता ।
विचार्य यूनानपतिः परिस्थितिं
गृहोन्मुखः सन् बिमुमोच भारतम् ॥४४॥

सिकन्दर ने मौर्यराज के बल की कथा सुनी । यूनान की सेना डर गई । सिकन्दर ने परिस्थिति को समझकर भारतवर्ष को छोड़ दिया और अपने घर का रास्ता लिया ।

मृतोऽधिमार्ग स सिकन्दरो महान्
यूनानराज्यं शकलीबभूव च ।
सेनापतिस्तस्य सिलूकसः पुनः
पदं दधौ भारतवर्षभूमिषु ॥४५॥

सिकन्दर मार्ग में मर गया । यूनान साम्राज्य के टुकड़े टुकड़े हो गये । सिकन्दर के सेनापति सिलूकस ने भारतवर्ष पर फिर चढ़ाई कर दी ।

युद्धाङ्गणे मौर्यनृपस्य सेनया
प्रकर्षरूपेण सिलूकसो जितः ।
ततस्तु कस्यापि विदेशवासिनो
नात्र प्रवेष्टुं हि बभूव धृष्टता ॥४६॥

मौर्यराज के सेना ने युद्ध में सिलूकस को भली भांति मार भगाया। तब से किसी विदेशी ने यहाँ आने की धृष्टता नहीं की।

इत्थं विमुक्तः परदेशशासनाच्
छशाकमोक्तुं न समाजबन्धनात् ।
आभ्यन्तरैर्दोषगणैश्च बाधितश्-
चकारदेशो नहि काञ्चिदुन्नतिम् ॥४७॥

इस प्रकार पराये शासन से मुक्त होते हुये भी भीतरी दोषों के कारण देश सामाजिक बुराइयों से छूट न सका और न देश ने कुछ उन्नति की।

अन्यत्रभूमौ खलु देशभारतात्
सर्वत्र जातं परिवर्त्तनं महत् ।
महान्ति कुत्रापि लघूनि कुत्रचित्
जातानि राष्ट्राणि मृतानि तत्क्षणम् ॥४८॥

भारतवर्ष के बाहर पृथ्वी पर बड़े बड़े विप्लव हुये। कहीं बड़े बड़े, कहीं छोटे छोटे राष्ट्र स्थापित हुये और थोड़े ही काल में नर गये।

प्रावृट्सु रोहन्ति यथामहीरुहः
संवर्धिता द्राक् च मृता भवन्ति।
राष्ट्राणि तद्वत् रुरुहुर्महीतले
मम्लुश्च नेशुश्च तथाऽञ्जसाऽञ्जसा ॥४९॥

जैसे बरसात में वृक्ष उत्पन्न होते बढ़ते तथा शीघ्र नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी पर राष्ट्र भी उत्पन्न हुये, मुरझा गये और शीघ्र नष्ट हो गये।

उद्धारका नैकविधाः स्वदेशजा
विभिन्नसिद्धान्तनिरूपणप्रियाः
अराजकत्वाच्च समुद्ययुस्तदा
मतानि तेभ्यो विविधानि जज्ञिरे ॥५०॥

अनेक प्रकार के अपने देश में उत्पन्न हुये और भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के शौकीन सुधारक अराजकता के कारण उत्पन्न हो गये और उन्होंने अनेक मत बना डाले।

अघोषयँस्ते जनताहिताय च
सम्प्रेषिताः स्मः प्रभुणा वयं दिवः ।
श्रद्धा सदाऽस्मासु विधीयतां जनै-
रस्माकमाज्ञा भुवि पाल्यतां शुभा ॥५१॥

उन्होंने जनता के हित के लिये ऐसी घोषणा की कि हमको ईश्वर ने द्यौलोक से भेजा है मनुष्यों को चाहिये कि हम पर सदा विश्वास रक्खें और हमारी आज्ञा ससार भर में मानी जावे ।

निशम्य तेषां वचनानि केचन
वैचित्र्ययुक्तानि, चमत्कृतास्तथा ।
कैश्चित्तु कार्यैरविवेकपूरिता-
स्तेषां गुरुत्वं सहसैव मेनिरे ॥५२॥

कुछ लोगों ने उनके विचित्र वाक्यों को सुनकर और कुछ कामों के चमत्कारों से आकर्षित होकर बिना विवेक के उन लोगों के गुरुत्व को स्वीकार कर लिया ।

दिनेषु गच्छत्स्वलभन्त ते बलं
छलानि देशेषु बहुत्र चक्रिरे ।
संघा दलानां नियता यथाक्रमं,
कुसम्प्रदायाः सुदृढा अजीजनन् ॥५३॥

कुछ दिनों में ऐसे लोगों का बल बढ़ गया और बहुत से देशों में इन्होंने छल करना शुरू किया। क्रमशः दलों के संघ बन गये और प्रबल अनिष्ट सम्प्रदाय उठ खड़े हुये।

लुप्तश्च धर्मः खलु सार्वभौमिको
मतानि तुच्छाशयगर्भितानि च।
प्रादुर्बभूवू रविरश्म्यदर्शने
क्षुद्रा यथा रात्रिषु दीपमालिकाः ॥५४॥

सार्वभौम धर्म का लोप हो गया। तुच्छ आशय वाले मत प्रादुर्भूत हो गये जैसे सूर्य्य की किरणों के छिप जाने पर रात्रियों में दीपकों की मालायें।

ईरानदेशे जरथुष्टनामको
विद्वांस्तपस्वी नरनेतृपुंगवः।
संस्थापयामास मतं स्वनामतः,
स्वदेवदौत्यं प्रकटीचकार च ॥५५॥

ईरान देश में जरथुष्ट नामक एक तपस्वी तथा नेतृत्व गुण वाले विद्वान ने अपने नाम से एक मत चलाया और अपने को पैगम्बर बताया।

ते पारसीका जरथुष्टमार्गगा
अपूजयन्नग्नितनुं जगत्पतिम् ।
धर्मस्तु तेषामधिकांशरूपतो
वेदेन सार्धं विदधौ समानताम् ॥५६॥

जरथुष्ट के मार्ग पर चलने वाले पारसी लोग ईश्वर को अग्नि मानकर पूजने लगे। बहुत सी बातों में उनका धर्म वेदों के समान ही था।

तथापि मन्तव्यविभिन्नतैतयो-
र्द्यावापृथिव्योरिव या विराजते ।
अस्त्येव सा द्वेषविरोधकारिणी,
जानन्ति यां केचन तत्त्वदर्शिनः ॥५७॥

तौभी इन दोनों मतों में आकाश और भूमि का भेद है। इससे द्वेष बढ़ता है। इस बात को कुछ विद्वान् ही समझ सकते हैं।

वेदेषु कर्त्ता प्रतिपादितो महान्
स एक एव स्वयमेव पालकः ।
दाता फलानामसुधारिकर्मणां,
केनापि रोधो नहि तस्य शक्यते ॥५८॥

वेदों का सिद्धान्त है कि एक ईश्वर ही सृष्टि-कर्त्ता है वही पालक है। वही प्राणियों के कर्मों का फल दाता है। कोई उसका विरोध नहीं कर सकता।

द्वे पारसीकप्रतिपादिते मते
शक्ती प्रपंचस्य नियंत्रणे रते।
एकातु निर्माति तदस्ति यच्छुभ-
मभद्रमन्या कुरुते विरोधतः ॥५९॥

पारसियों का मत ऐसा है कि जगत् को दो शक्तियाँ नियन्त्रित करती हैं। एक तो शुभ चीजों को बनाती है। दूसरी इसके विरोध में अनिष्ट चीजें करती है।

इत्थं रिपू द्वौ जगतस्तु शासकौ,
पुण्यस्य कल्याणमयस्य सत्पतिः।
शैताननामाऽघ्यकरोऽपरो,नरा
यत्प्रेरिताः संविचलन्ति सत्पथः ॥६०॥

इस प्रकार जगत् के शासक दो हैं। वे एक दूसरे के शत्रु हैं। एक तो शुभ और कल्याणकारी बातों का सत्पति है अर्थात् ईश्वर, दूसरा पाप करने वाला है जो लोगों को सत्य मार्ग से बहकाता है।

यदा जगन्निर्मितवान् जगत्पति-
र्जीवानजीवाँश्च सुरान् सुरेतरान्।
एकः सुराणामभवत् समुद्धत
आदेशमीशस्य तथोदलङ्घयत् ॥६१॥

जब ईश्वर ने जगत् बनाया और जीव अजीव फरिश्ते और जिन्न उत्पन्न किये तो एक फरिश्ता गुस्ताख हो गया और उसने ईश्वर की आज्ञा न मानी।

बहिष्कृतोऽसौ परमेशकोपतः
पपात भूमौ खलु देवसद्मनः।
अद्यावधि ब्रह्मण इष्टमार्गतो
विचाल्यते तेन दुरात्मना प्रजा ॥६२॥

ईश्वर के कोप से वह स्वर्ग से निकाल दिया गया और भूमि में आ पड़ा। तब से आज तक वह दुरात्मा प्रजा को ईश्वर के मार्ग से बहकाया करता है।

यद् यद्धि पापं कुरुते नरो भुवि
तत्कर्म शैतानजमस्ति सर्वथा।
विमोचनार्थं तदनर्थजालतः
सुदेवदूतो जरथुष्ट आगमत् ॥६३॥

संसार में मनुष्य जो जो पाप करता है वह सब शैतान कराता है। इसी अनर्थ जाल से छुड़ाने के लिये जरथुष्ट पैगम्बर आया।

होमे यथाऽऽर्य्या जुहुवुर्हुताशने
तथैव चक्रुः खलु पारसीकजाः।
यमेव चैते प्रभुरित्युपासते,
स भौतिकोग्निर्नतु वैदिकेश्वरः ॥६४॥

जैसे आर्य्य लोग अग्नि में होम करते हैं वैसे ही पारसी भी करते हैं। परन्तु जिसको पारसी लोग प्रभु कहते हैं वह भौतिक अग्नि है वेद-प्रतिपादित ईश्वर नहीं।

जम्बूमहाद्वीपतटे सुपश्चिमे
त्रयं मतानां प्रमुखं ह्यजायत।
मूलं युहूदीयमतं, तदुद्भवं
ख्रीष्टीयमन्त्यं च मुहम्मदीयकम् ॥६५॥

एशिया महाद्वीप के पश्चिम में तीन प्रमुख मत उत्पन्न हुये। उनका मूल था युहूदी मत। उससे ईसाई मत निकला और तीसरा मुसलमानी मत।

पुरा यदाऽऽर्य्या अभवन्ननेकधा
तदैकशाखा परिहाय भारतम् ।
दिशि प्रतीच्यामगमत्तथाऽवसन्
मिश्रादिदेशेषु सुदूरवर्त्तिषु ॥६६॥

पहले समय में जब आर्य्य लोग कई टुकड़ियों में बट गये तो उनकी एक शाखा भारतवर्ष को छोड़कर पश्चिम की ओर गई और दूरवर्त्ती मिश्र आदि देशों में बस गई ।

भावान् विसस्मार पुरातनाँस्तदा,
दधारचार्य्यान् प्रति वैरभावनाः ।
तत्याज वेदस्य विशुद्धसंस्कृतिं
मेने मतं वेदविरोधि नूतनम् ॥६७॥

उस शाखा ने पुराने विचार भुला दिये, आर्य्यों से द्वेष रखना शुरू कर दिया। वेदों की शुद्ध संस्कृति को छोड़ दिया और नया वेद का विरोधी मत ग्रहण कर लिया ।

आनेतुमन्यान् स्वमतेषु मानवान्
संप्रेरिता नूतनधर्मनेतृभिः ।
एते समेत्यैव मतावलम्बिनो
विजग्रहुर्देशविदेशवासिभिः ॥६८॥

नये धर्म के नेताओं की प्रेरणा से और लोगों को अपने मत में लाने के लिये इन मत वालों ने अपने और दूसरे देशों के लोगों के साथ झगड़ा करना आरम्भ कर दिया।

स्वीकर्त्तुमैषीच्च न यो मतं नवं
बभूव तेषां स तु कोपभाजनम्।
अनेकधा तं तुतुदुः स्वकं मतं
बलाद्धि तस्योपरि ते न्ययूयुजन्॥६९॥

जो कोई उस नये मत को स्वीकार न करता उससे वे क्रुद्ध हो जाते। अनेक प्रकार के उसको कष्ट देते और जबरदस्ती उसको अपने मत में ले आते।

मुहम्मदीयो गजनीस्थभूपति-
र्मदेनमत्तो महमूद नामकः।
निधातुमार्य्येषु बलान्मतं स्वकं-
माचक्रमे देशमिमं स्वसेनया॥७०॥

गजनी का मुसल्मान राजा महमूद मद से मत्त आर्य्यों को जबर-दस्ती अपने मत में करने के लिये भारतवर्ष पर चढ़ आया।

नृपा इहस्था गृहभेदकारणा-
च्छेकुर्न रोद्धुं तमु विश्ववैरिणम् ।
निहत्य लोकाँश्च विजित्यभूमिपान्
देशस्य विध्वस्तिरकारि सैनिकैः ॥७१॥

यहाँ के राजे घर की कलह के कारण इस संसार के वैरी को रोक न सके। उसकी फौज ने लोगों को मार डाला, राजों को हरा दिया और देश का नाश कर दिया।

न्यपातयन् शोभनमन्दिराणि ते,
तदीयमूर्तीः शतधा ह्यखण्डयन् ।
अघ्नँश्च सर्वानसिना पुरोहितान्
सर्वाः समुत्कृष्टकला व्यनाशयन् ॥७२॥

उन्होंने सुन्दर मन्दिर गिरा दिये। उनकी मूर्त्तियाँ तोड़ डाली। सब पुरोहितों को तलवार के घाट उतार दिया और सब उच्च कलाओं का नाश कर दिया।

संप्राप्य रत्नानि निशम्य हीनतां
लालायिता आक्रमितुं विदेशिनः ।
दलानि तेषां सततं समाययु-
रिहैव केचिद् वसतिं च चक्रिरे ॥७३॥

रत्नों को पाकर और देश की दुर्दशा की कथा सुनकर विदेशियों को चढ़ाई करने की लालसा उत्पन्न हो गई। उनके दल के दल यहाँ आते रहे और बहुत से यहाँ बस भी गये।

कालेन यातेन विदेश वासिनां
संवृद्धिमाप्ता गणना शनैः शनैः।
मुहम्मदीया अभवन् नराधिपा
इहस्थ लोका अलभन्त दासताम् ॥७४॥

थोड़े दिनों में विदेशियों की संख्या धीरे धीरे बढ़ती गई। मुसलमान राजा हो गये और यहाँ के लोग गुलाम हो गये।

इत्यार्योदये विदेशीयमतोत्पत्तिर्नाम तृतीयः सर्गः।

अथ चतुर्थः सर्गः

आर्य्यावर्त्ते परमसुखदे चोत्तरे मध्यदेशे,
चाह्वाणानां कुलदिनकरः क्षत्रियाणां यविष्ठः।
पृथ्वीराजस्त्रिदशशतके वत्सरे विक्रमीये,
राज्यं चक्रे धनबलयुते सुष्ठुदिल्ली प्रदेशे ॥१॥

परम सुखदायक आर्य्यावर्त्त के उत्तर भाग के मध्य देश में विक्रम की १३ वीं शताब्दी में धन और बल से सम्पन्न दिल्ली में क्षत्रियों में महाबलवान् चौहानवंश का सूर्य्य पृथ्वीराज राज करता था।

पूर्व्ये पार्श्वे लसति नगरी कान्यकुब्जा विशाला,
यत्रेष्टेस्म क्षितिप जयचन्द्राभिधेयोऽभिमानी।
आसीदेका रतिसमसुता तस्य संयोगिताख्या,
रूपं यस्याः कविकुलकलालास्यभूमित्वमाप ॥२॥

पूर्व की ओर विशाल कन्नौज नगरी है। वहाँ अभिमानी जयचन्द्र राज करता था। उसकी रति के समान रूपवती कन्या संयोगिता थी। जिसके रूप की कवियों में बड़ी ख्याति थी।

दिल्लीशानां विकटकलहः कान्यकुब्जाधिपालै-,
दीर्घात्कालात् सततमकरोच्छान्तिभङ्गं प्रजासु ।
पृथ्वीराजं कुलिशतुलितैः शत्रुबाणैरभेद्यं
शत्रोः कन्या कठिनहृदयं पुष्पबाणैरभैत्सीत् ॥३॥

दिल्ली और कन्नौज के राजों में बहुत दिनों से विकट लड़ाई चली आती थी जिससे निरन्तर प्रजाओं में अशान्ति फैलती थी। जिस पृथ्वीराज के कठिन हृदय को शत्रु के वज्र तुल्य बाण नहीं बेध सकते थे उसको उसके शत्रु जयचन्द्र की कन्या ने फूलों के बाणों से छेद दिया। अर्थात् वह उस पर मोहित हो गया।

मत्वा प्राप्तिं सरलरचनोपायदुःसाध्यरूपां
दिल्लीराजः कुटिलमनसाऽतर्कयत् कूटमार्गम् ।
वृद्धामेकां नवजनमनोवृत्तिविज्ञानदक्षां
वप्तुं तस्या मनसि मदनं योजयामास कामी ॥४॥

पृथ्वीराज ने देखा कि सुगमता से जयचन्द्र की कन्या को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः उसने कुटिल मन से टेढ़ा मार्ग ढूंढा। एक बुढ़िया को जो युवा और युवतियों की मनोवृत्तियों को समझने में चतुर थी इस काम पर नियुक्त किया कि वह लड़की के मन में उसके प्रति प्रेम का बीज बो देवे।

वेषे धात्र्याः कुटिलमहिला कान्यकुब्जं जगाम,
चातुर्येण क्षितिपतिगृहे सा च लेभे प्रवेशम् ।
तत्रागत्याललिततनुधा कौशलं वाचि लब्ध्वा,
तत्रत्यानां कथमपि नृणां मानपात्रं बभूव ॥५॥

वह कुटिल स्त्री धायी का रूप रखकर कन्नौज गई और चातुर्य से राजमहल में प्रवेश पा लिया। सुन्दर शरीर बनाकर और वाणी में कुशलता प्राप्त करके वह किसी प्रकार कन्नौज वालों के मान का पात्र बन गई।

राज्ञः कन्या नववयसि सा प्राप्य धात्रीं विचित्रां,
क्रीडावृत्त्या सरलहृदया सौख्यलाभं च मेने ।
धात्री वृद्धा नरपतिसुतागुप्तमायाविवार्त्ता,
सम्यक् सम्यक् प्रगमितवती मोहनं मन्त्रजालम् ॥६॥

राजा की कन्या नई आयु में थी। उसने इस विचित्र धायी को पाकर खेल की वृत्ति में बड़ा सुख माना। राजकन्या से छिपाया है मायावी बात को जिसने ऐसी बूढ़ी धायी ने अपना मोहनी मंत्र का जाल फैलाना आरंभ कर दिया। अर्थात् राजकन्या न जान पाई कि यह कुटनी है। और वह कुटनी का काम करने लगी।

दत्ता शिक्षा बहुविधियुता कन्यकायै कलासु,
नृत्ये वादे पठनविषये लेखने गायने वा ।
धात्र्या प्रेम्णा परमकरुणां दर्शयन्त्या सुसख्या,
यावत् पित्रोरुरसि सकलाऽजायत श्लाघ्यतुष्टिः ॥ ७ ॥

उस धायी ने प्रेम से अत्यन्त करुणा दिखाकर और सखीभाव से उस कन्या को भाँति भाँति की कलायें नाच, बाजा, पढ़ना लिखना, गाना आदि सिखा दी। यहाँ तक कि मा बाप के मन को बड़ा संतोष हो गया और वे उसकी प्रशंसा करने लगे।

बाल्यावस्थां नृपतितनया लङ्घयामास शीघ्रं,
तारुण्यश्रीर्वपुषि च पदं धीरमस्या व्यधत्त ।
प्रातर्मन्दं जनयति यथा वायुरब्धौ तरङ्गान्,
तस्याश्चित्ते मनसिजकृतः क्षोभ उत्पद्यते स्म ॥ ८ ॥

राजकन्या ने शीघ्र ही बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था में प्रवेश किया और जैसे प्रातः काल का मन्द समीर समुद्र में छोटी लहरें उत्पन्न करता है उसी प्रकार कन्या के हृदय में भी कामदेव ने क्षोभ उत्पन्न करना आरम्भ किया।

दृष्ट्वा धात्री स्मररसमिमं नेत्रयोः कन्यकायाः
पृथ्वीराजस्तुतिगुणकथां श्रावयामास नित्यम् ।
मुग्धाऽस्मार्षीन्न कुलरिपुतां पुष्पधन्वेषुबिद्धा
तस्य प्रीतिं हृदयपटले मानपूर्वं व्यलेखीत् ॥ ९ ॥

धायी ने जब देखा कि कन्या की आँखों में कुछ मदनमद की रेखा दिखाई पड़ती है तो उसने नित्य उसे पृथ्वीराज के गुणों की कहानी सुनानी आरंभ की। उस मुग्ध बाला ने कामदेव के बाणों से आहत होकर कुल की शत्रुता को भुला दिया और पृथ्वीराज की प्रीति को अपने हृदयपटल पर लिख लिया।

कामज्वाला ज्वलति हृदये मन्दगत्यैव पूर्व-
मन्तर्लोके तदनु कुरुते दीप्तिमत् तत् समस्तम् ।
पश्चाद् धूम्रस्तिमिरगहनो जायते सर्वतोऽन्तः,
कामेनान्धः किमपि जगति द्रष्टुमन्यन्न शक्तः ॥ १० ॥

काम की ज्वाला पहले तो मन में मन्दगति से जलती है। फिर समस्त अन्तर्लोक को प्रज्वलित कर देती है। उसके पश्चात् हृदय अन्धेरे धुयें से भर जाता है। काम के अन्धे को संसार में और कुछ सूझता ही नहीं।

पृथ्वीराजस्तदरितनया पुष्पधन्वेषुविद्धौ
देशं वंशं च न ददृशतुः स्वार्थसिद्धौ निमग्नौ ।
धात्र्या किंचित् कथमपि कृतं मंत्रणं गुप्तरीत्या
दिल्लीभूपो युवतिहरणे दत्तचित्तो बभूव ॥ ११ ॥

पृथ्वीराज और उसके शत्रु की कन्या दोनों ऐसे काम के वश हुये कि उन्होंने देश और कुल की मर्यादा को न देखा और स्वार्थ सिद्धि में फंस गये । धायी ने कुछ ऐसी गुप्त चाल चली कि पृथ्वीराज लड़की को भगाने की तरकीब सोचने लगा ।

ज्ञात्वा कन्यां तरुणवयसं कान्यकुब्जाधिपालः
कन्योद्वाहं स्वयमरचयद् राजवंशीयरीत्या ।
पृथ्वीराजादितरनृपतीनादरेणाजुहाव,
द्वारे शत्रोरवमतिधिया स्थापयामास मूर्त्तिम् ॥ १२ ॥

कन्नौज के राजा ने लड़की को जवान समझकर राजवंश की रीति के अनुसार स्वयंवर रचा । पृथ्वीराज को छोड़कर सभी राजों को आदर पूर्वक बुलाया । परन्तु अपने शत्रु पृथ्वीराज की मूर्ति बनवाकर अपमान के रूप में द्वार पर खड़ी करदी ।

यस्मिन्काले स्ववरवरणे यत्नशीला सुगात्री,
नापश्यत् स्वप्रियतमजनं स्वागतार्थं सभायाम् ।
दृष्ट्वा सर्वं नरपतिगणं मानिनी तुच्छदृष्ट्या,
मूर्त्याः कण्ठे हृदयशशिनः पुष्पहारं न्यधत्त ॥ १३ ॥

उस रूपवती कन्या ने अपने वर के वरण में यत्नशीला होकर अपने प्यारे को स्वागत के लिये सभा में न देखा और राजों की ओर तुच्छ दृष्टि डालकर अपने हृदय के चांद पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में जयमाल डाल दी ।

आसीद् दिल्ली-नरपतिरपि क्षुद्रवेशे सभायां
दृष्ट्वा दृश्यं परमसुखदं प्राप्तकामो जहर्ष ।
अङ्के नीत्वा सुतनुललनां वायुवेगेन कान्तो
वाज्यारूढो मुदितहृदयः प्रस्थितो राजधानीम् ॥१४॥

उस समय उस सभा में पृथ्वीराज भी साधारण मनुष्य के भेस में उपस्थित था । उस सुखद दृश्य से अपनी कामना की पूर्ति देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ । उसने सुन्दरी ललना को गोद में लेकर अपने घोड़े पर बिठाल लिया और आनन्दपूर्वक वायु वेग से दिल्ली को रवाना हो गया ।

जज्वालाग्निः कुपितहृदये कान्यकुब्जस्य राज्ञो
बन्दीकर्त्तुं रतिरतिपती प्रेषयामास सैन्यम् ।
घोरे युद्धे बहुनरगणा आहता वा हतावा
पृथ्वीराजो विजयवसुधां प्राप्य दिल्लीं प्रविष्टः ॥१५॥

कन्नौज के राजा के हृदय में कोप की ज्वाला जल उठी। उसने रति और रतिपति अर्थात् संयोगिता और पृथ्वीराज दोनों को कैद करने के लिये सेना भेजी। घोर युद्ध हुआ, बहुत से घायल हुये या मारे गये। पृथ्वीराज अपने विजय की वसुधा संयोगिता को लेकर दिल्ली आ गया।

एवं बीजं कलहविषजं नूनमुप्तं कुलाभ्या-
मार्य्यावर्त्ते परमसुखदे शङ्करे पुण्यदेशे।
यावद् द्वेषच्छलवटतरुस्तुङ्गशाखो बभूव
यत्प्रच्छायाश्रितरिपुगणा देशिनः पीडयन्ति ॥१६॥

इस प्रकार भारतवर्ष की परमसुखी कल्याणकारक पुण्य भूमि में दो कुलों ने कलह का बीज बो दिया। और वह द्वेष रूपी वृक्ष शीघ्र ही बहुत ऊँचा हो गया। इसकी छाया में बैठकर शत्रु लोग आज भी देशवासियों को सताते रहते हैं।

दिल्लीराज्यक्षयधृतमनाः कान्यकुब्जक्षितीन्द्रो
व्यस्मार्षीत् तं निजकुलनयं देशजात्योश्च लाभम् ।
तत् संकेताद् यवननृपतिर्वेदधर्मस्य शत्रु-
'गोराद्' देशात् समविशदिदं भारतं निग्रहीतुम् ॥१७॥

दिल्ली राज्य को नष्ट करने के निश्चय में कन्नौज का राजा अपने कुल की नीति तथा देश और जाति के लाभ को भूल गया। उसके संकेत से वेद धर्म का शत्रु गोर देश का राजा मुहम्मद गोरी भारतवर्ष के लेने के अभिप्राय से चढ़ आया।

गोराध्यक्षो विजय-पदवी-प्राप्ति-यत्न प्रवृत्तः,
पृथ्वीराजो रतिसमबधूप्रेम-पङ्के निमग्नः ।
जामातुर्वै वधधृतमनः कान्यकुब्जाधिपालो
राजानोऽन्ये निजनिजहितैर्रागविद्वेषयुक्ताः ॥१८॥

मुहम्मद गोरी अपनी विजय की धुन में था। पृथ्वीराज अपनी सुन्दर बधू के प्रेम के कीचड़ में लतपत था। कन्नौज का राजा अपने दामाद को मारने का उपाय सोच रहा था दूसरे राजे अपने अपने हित की बात सोचकर रागद्वेष में फंसे हुये थे।

पश्येत् को वा स्वहितविषयान् स्वार्थभावान् विहाय,
रक्षेत को वा रिपुगणकराद् देशधान्यं धनं वा ।
कुर्य्यात् को वा पर-शरहतां मातरं शल्यशून्यां,
को वा भव्यां भरतधरणीं मोचयेच्छत्रुपाशात् ॥१९॥

ऐसा कौन था जो स्वार्थ को छोड़कर हित के विषयों पर विचार करता, कौन ऐसा था जो शत्रुओं के हाथ से देश के धन धान्य की रक्षा करता। दूसरे के शरों से घायल माता के घाव में से तीर कौन निकालता। भव्य भारत भूमि को शत्रु के जाल से कौन मुक्त करता।

पृथ्वीराजं यवननृपतिर्यत्र काले जघान
दिल्लीराज्यं यवनकरयोर्निर्जगामार्य्यहस्तात् ।
आर्य्यावर्त्ते मुहमदमतं खड्गशक्त्या प्रसस्रे
तस्मात् कालात् प्रभृति न सुखं भारतीया लभन्ते ॥२०॥

जब मुसल्मान राजा ने पृथ्वीराज को मार डाला और दिल्ली का राज आर्य्यों के हाथ से निकलकर यवन के हाथों में आया आर्य्यावर्त्त में तलवार के जोर से मुसलमानी मत फैलने लगा। उस समय से आज तक भारतवासियों को सुख नहीं मिल रहा।

यातो आर्य्या यदनु जगतां लोकपालाश्च चेलु-
रायातास्ते पशुगुणयुताः पीडिता यैस्तु सृष्टिः ।
श्रद्धावन्तः शुभनयविदो मानवा विप्रणष्टाः,
प्राणिघ्नास्ते वृकमृगसमा दुष्टभावाः समेयुः ॥२१॥

वे आर्य्य जाते रहे जिन के पीछे जगत् भर के राजे चलते थे। ऐसे पशुओं की सी प्रकृति वाले लोग आ गये जिन्होंने सृष्टि को पीडित कर दिया। श्रद्धावाले और अच्छी नीति वाले लोग नष्ट हो गये। प्राणियों की हत्या करने वाले भेड़िये और सिंह आदि के समान दुष्ट भाव आ गये।

पुष्पोद्यानं सुरभिसहितं भारताख्यं यदासीत्
सानन्दं ते पिकशुकगणाः कूजनं यत्र चक्रुः ।
अन्ये लोका अपि शिथिलिता यत्रविश्राममापुः,
संजातं तत् कुसमित वनं कण्टकारण्यतुल्यम् ॥२२॥

जो भारतवर्ष रूपी सुगन्धित बाग था। जहाँ कोयल तोते आदि आनन्द से किलोलें करते थे, जहाँ दूसरे थके लोगों को भी विश्राम मिलता था वह फूलों का वन अब काँटों का जंगल हो गया।

बाह्यै भूपैर्नवशतसमा अत्र राज्यं ह्यकारि,
तेषां नीत्यागरलभरया भारतीयाः समग्राः ।
मन्दं मन्दं परवशगता दीनतां प्राप्तवन्तो
विद्यामूर्जं धनमथ नयं तत्यजुः कौशलं च ॥२३॥

यहाँ बाहर के राजों ने नौसौ वर्ष राज किया । उनकी विषैली नीति से धीरे धीरे सब भारतवासी दीन हो गये और विद्या, तेज, धन, नीति तथा कौशल को खो बैठे ।

हत्वा केचिन् नृपकुलनरान् राज्यभूमीरहार्षु-
श्चान्ये शेषान् विविधविधिभिश्चक्रिरे स्वाधिकारे ।
इत्थंसर्वैश्चिरपरिचितं स्वात्ममानं निहत्य
स्वस्मिन् देशे परजनसमं जीवनं याप्यते स्म ॥२४॥

कुछ लोगों ने राजकुलों की हत्या करके राज छीन लिया । दूसरों ने अन्य प्रकार लोगों को अपने वश में कर लिया । इस प्रकार सब लोग पुराने आत्म गौरव को खोकर अपने देश में परदेशियों के समान रहने लगे ।

पृथ्वीराजे यमपुरमिते युद्धमध्येऽरिहस्तात्
कश्चिद् वीरो मुहमदकुले पालितो दासरीत्या ।
कुत्बुद्दीनः प्रथमयवनः स्थापितोराज्यपीठ,
इन्द्रप्रस्थे कतिपयसमाः शासनं तेन तेने ॥२५॥

जब पृथ्वीराज शत्रु के हाथ से युद्ध में मारा गया तो कुत्बुद्दीन नामक एक वीर जो मुहम्मद गोरी के परिवार में गुलाम के तौर पर पला था दिल्ली की गद्दी पर पहले मुसलमान बादशाह के रूप में बिठाला गया और उसने कुछ दिन वहाँ राज किया।

दासेवंशे नृपतियुगलं संबभूव प्रसिद्धं,
शम्शुद्दीनः प्रथमनृपतिर्बल्बनश्च द्वितीयः,
पूर्वेभ्यस्तौ प्रचुरधरणीं न्यग्रहीष्टां नृपेभ्यो,
हित्वा हित्वा स्वपितृवसुधां तेऽपि दासा अभूवन् ॥२६॥

दास वंश के दो राजे प्रसिद्ध हुये। एक शम्शुद्दीन अल्तमश और दूसरा गयासुद्दीन बलबन। इन दोनों ने पुराने राजों से बहुत सी भूमियाँ छीन लीं. इस प्रकार यह पुराने राजे भी अपने पूर्वजों की वसुधा को खोते खोते स्वयं दास हो गये।

अन्ये दासा व्यसननिरता राज्यकार्य्यं न चक्रुः
मद्यं मांसं मनसिजरतिस्त्रीणि कर्माणि तेषां।
देशोऽविद्या-कलह-कुमति-द्रोह-मात्सर्यपूर्णो
दारिद्र्येण व्यथितहृदया क्रन्दमाना प्रजाऽभूत् ॥२७॥

दास वंश के अन्य राजे व्यसनों में फँसे रहे। उन्होंने कोई राज काज नहीं किया। शराब, मांस और मैथुन यही तीन उनके काम रहे। देश अविद्या, कलह, कुमति, विद्रोह और मात्सर्य से भर गया और दुःखी प्रजा दरिद्रता से पीड़ित होकर चिल्लाती रही।

दृष्ट्वा राज्यं कुटिलगतिमन्मत्स्यनीतिं च देशे
खिलजी-वंशप्रभवसचिवः काऽपिनाम्ना जलालः ।
हत्वा दासं युवकनृपतिं स्वामिनं कैकुबादं
सेना-शक्त्या शिरसि मुकुटं धारयामास सद्यः ॥२८॥

खिल्जी वंश में उत्पन्न हुआ एक मंत्री था जिसका नाम था जलालुद्दीन खिलजी। इसने देखा कि राज कुटिलगति से चल रहा है और देश में मछलियों की नीति है अर्थात् बलवान निर्बल को खा रहा है तो उसने अपने दास-कुलोत्पन्न कैकुबाद नामी युवक स्वामी को मारकर सेना की शक्ति से राजमुकुट भी अपने सिर पर रख लिया।

अस्मिन् वंशेऽपि न बहुदिनं राज्यलक्ष्मी रराज,
तेषां राज्ञामवगुणगणाश्चक्रिरे तद् विनाशम् ।
धर्मान्धत्वे बलमदयुते धर्ममूलं विहाय,
नृणां घाते नरपतिनयं दर्शयाञ्चक्रिरे ते ॥ २९ ॥

इस वंश में भी बहुत दिन राजलक्ष्मी नहीं रही। इन राजाओं के अपने दोषों ने ही इन का नाश कर दिया। बल के नशे में चूर, धर्मान्ध लोगों ने धर्म के मूल को तो छोड़ दिया और मनुष्यों का नाश करके ही मनुष्यों के पालक होने के धर्म को दर्शाने लगे।

एकस्तेषां प्रथमनृपतेर्भ्रातृजः क्रूरवृत्तिः,
अल्लादीनः कथमपिनृपं राज्यलोभादहन् सः ।
इत्थं तीर्त्वा रूधिरसरितं राज्यपीठं समाया--
दत्याचारी तदनुशतधा पीडयामास लोकान् ॥ ३० ॥

उनमें से एक, पहले राजा का भतीजा अलाउद्दीन बड़ा क्रूर था। उसने राज्य के लोभ से किसी प्रकार अपने चचा जलालुद्दीन को मार डाला और रुधिर की नदी को पार करके गद्दी पर आ बैठा। इस अत्याचारी ने पीछे से सैकड़ों तरह पर लोगों को पीडा दी।

चित्तौडाख्ये प्रमुख नगरे रत्नसेनस्य राज्ञ-
आसीद्धर्म्ये सरसिजमुखी पद्मिनी नाम देवी ।
रूपं तस्या रतिमदहरं काव्यकीर्तिं च लब्ध्वा,
मन्दं मन्दं श्रुतिपथमगात् तस्य दिल्लीश्वरस्य ॥ ३१ ॥

चित्तौड़ नामी प्रमुख नगर के राजा रत्नसेन के महल में कमल के समान सुन्दर मुख वाली एक देवी थी, जिस के रति के मद को हरने वाले रूप ने कविता की कीर्ति प्राप्त की। शनैःशनैः इस रूप की बात दिल्ली के बादशाह के कान में जापड़ी।

श्रुत्वा वार्त्तां मदनमददां कामिनीकान्तिराशे-
दिल्लीराजः कुसुमधनुषा विद्धचेता बभूव ।
अन्यस्यस्त्रीं निशिचरसमो, मन्यमानश्च भोग्यां
कर्तुं तस्या दुरपहरणं चिन्तयामास योगम् ॥ ३२ ॥

स्त्रियों के लावण्य की राशि पद्मिनी की कामोत्पादक वार्ता को सुनकर दिल्ली का बादशाह कामदेव के बाणों से विंध गया। राक्षसों के समान इसने दूसरों की स्त्री को भोग्य समझकर उसको हर लेने का उपाय सोचा ।

मह्यं देया कमलनयनी पद्मिनी क्षिप्रमेव,
रन्तुं योग्याः सुतनुरमणीर्मुस्लिमा एव नान्ये ।
ये वा नैतन्मुहमदमतं मानवा धारयन्ति,
तेभ्यः किञ्चिन्न भवति शिवं सुन्दरं काफिरेभ्यः ॥ ३३ ॥

कमल से नयन वाली पद्मिनी मुझे अभी दे दो। सुन्दर स्त्रियों को रमण करने के योग्य मुसलमान ही होते हैं दूसरे नहीं। जो आदमी मुसलमानी मत का अवलम्बन नहीं करते उन काफिरों के लिये तो कोई सुन्दर चीज़ है ही नहीं।

इत्यादेशं यवननृपतेः प्राप्य चित्तौडराजः,
कोपज्वालाज्वलितहृदयो भीमरूपो बभूव ।
धिग् धिक् कीदृङ् नरपतिरयं, सम्मता यस्य धर्मे
गम्या रम्या परनरवधूर्मन्मते मातृवद् या ॥ ३४ ॥

चित्तौड़ का राजा मुसलमान बादशाह के ऐसे हुक्म को पाकर क्रोध के मारे भीमरूप हो गया। धिक् धिक्। यह कैसा राजा है जिसके धर्म में पराई स्त्री गम्य और रम्य है। हमारे मत में तो पराई स्त्री माता के समान समझी जाती है।

पश्यन् राज्यं विपदिपतितं कोप-चिन्ता-हतः सः,
पीडोद्विग्नः प्रमुखसचिवान् मन्त्रदानाजुहाव ।
किं कर्त्तव्यं कथयत मया क्षत्रिया धर्मपाला
यस्माद् रक्षा भवतु यवनाद् दुष्टवृत्तेः कथंचित् ॥ ३५ ॥

राज्य को विपत्ति में पड़ा देखकर क्रोध और चिन्ता के मारे हुये राजा ने दुखी होकर परामर्श देने वाले प्रमुख मंत्रियों को बुलाया। और कहा, "हे धर्म के पालने वाले क्षत्रियों, बताओ, कि मुझे क्या करना चाहिये जिससे इस दुष्ट मुसलमान से किसी प्रकार रक्षा हो सके।"

ऊचुः सर्वे शृणु नरपते ! प्रार्थनामस्मदीयां
विश्वासं मा कुरु रिपुजने मुस्लिमे छद्ममूर्त्तौ ।
मानं देशो निजकुलनयश्चाङ्गनानां सतीत्वं
गोप्या एते सकलपुरुषैः सभ्यता-शत्रु-वर्गात् ॥ ३६ ॥

सब ने कहा "हे राजा, हमारी प्रार्थना सुनो। मुस्लिम कपटी राजा का विश्वास मत करो, सब मनुष्यों को चाहिये कि सभ्यता के शत्रुओं से इन बातों की अवश्य रक्षा करें, मान, देश, अपने कुल की मर्यादा, और स्त्रियों का सतीत्व।

हन्यन्ते ये प्रखरसमरे रक्षयन्तः स्वधर्मं
तेषां स्वर्गो मरणसमये निश्चितः क्षत्रियाणाम् ।
दृष्ट्वा दारानरिकरगतान् जीवितुं कः सहेत,
कृत्वा युद्धं जहि रिपुदलं रक्ष राज्ञीं यशश्च ॥३७॥

घोर युद्ध में जो अपने धर्म की रक्षा करते हुये मारे जाते हैं ऐसे क्षत्रियों को मरने के समय अवश्य ही स्वर्ग मिलता है। कौन ऐसा कायर है कि अपनी स्त्रियों को शत्रु के हाथ में पड़ता देखकर जीवित रहना सहन कर सके। युद्ध करो, शत्रु के दल का संहार करो और अपनी रानी तथा अपने यश की रक्षा करो।

आकर्ण्यैतत् पुलकिततनुः पद्मिनीप्राणनाथः,
क्षात्रोद्वेग-द्विगुणितबलो युद्धकामो बभूव ।
सिद्धैर्वीरैः प्रबलतनुभिः क्षत्रियैर्भीतिशून्यैः,
सार्धं शत्रुं स्वनगरमुखे धैर्यवान् प्रत्यपश्यत् ॥३८॥

यह सुनकर पद्मिनी के पति के शरीर में रोमांच खड़े हो गये। क्षात्र धर्म के जोश से उसका बल दूना हो गया। और वह युद्ध की इच्छा करने लगा। निडर, सिद्ध, मजबूत क्षत्रिय वीरों को लेकर धैर्यवान् राजा ने अपने नगर के द्वार पर शत्रु का सामना किया।

दिल्लीभूपः शलभसदृशा पर्यगात् सेनयाऽसौ,
चित्तौडाख्यं सकलनगरं बाह्यतः सर्वदिक्षु ।
घोरे युद्धे बहुभटगणाः शिश्यिरे भूमितल्पे
यावत् सेना यवननृपतेर्नागमत् सर्वनाशम् ॥३९॥

दिल्ली के बादशाह ने टिड्डीदल के समान बहुत सी सेना लेकर चित्तौड़ को चारों ओर से घेर लिया। घोर युद्ध में बहुत से वीर मारे गये जब तक कि मुसलमानों की समस्त सेना नष्ट न हो गई।

दिल्लीपोऽन्ते विषमसमयं स्वस्य दृष्ट्वा छलेन,
सन्धिं कर्त्तुं हृदय-रमणीवल्लभेनारिणाऽपि ।
नम्रादेशं मधुरविषवत् गूढमायानिगूढं,
चित्तौडेशं विनयविधिना प्रेषयामास शीघ्रम् ॥४०॥

बादशाह ने अपना खोटा समय देखकर अपनी हृदय की प्यारी पद्मिनी के पति के साथ भी जो उस का शत्रु था सन्धि करने का विचार किया और मीठे जहर के समान छल से भरा हुआ नम्र आदेश विनय पूर्वक चित्तौड़ के राजा के पास भेजा।

सख्यं राजन् तव बलवतः प्राप्तु कामा वयस्मः,
जीव्यास्तं त्वं तव च सुमुखी पद्मिनी दीर्घकालम्।
इच्छा त्वेका वसति हृदये निर्मला दोषशून्या,
तस्याः पूर्त्ति कुरु, यदि कृपा ते, सखे रत्नसेन ॥ ४१ ॥

"हे राज, अब हम तुझ बलवान के साथ मित्रता चाहते हैं। तू और तेरी सुन्दर पद्मिनी दीर्घकाल तक जीवित रहें। परन्तु एक निर्मल, दोषरहित इच्छा मेरे हृदय में बनी हुई है। यदि कृपा हो जाय तो हे मित्र रत्न सेन तू इच्छा को पूर्ण करदे।

भस्मीभूता मनसिजमला आहवाग्नौ समग्राः,
भक्तेर्भावो विमलसुखदश्चित्तभूमौ चकास्ति
कामान्मुक्तो विमलमनसा द्रष्टुमिच्छामि देवीं
यस्या रूपं, कथयति जगत्, सुन्दरं क्षेमदं च ॥ ४२ ॥

युद्ध की अग्नि में काम के मल भस्म हो गये। अब तो चित्त की भूमि में भक्ति का शुद्ध भाव चमक रहा है। काम के भाव से छुटकारा पाकर मैं शुद्ध भाव से देवी के दर्शन करना चाहता हूँ संसार जिस के रूप को सुन्दर और क्षेम प्रद कहता है"

सारांशोऽयं कथमपि तथा साधितं तेन राज्ञा,
येनानीता परिजनगणैः पद्मिनी सा गवाक्षे ।
तस्याश्छायां यवननृपतिर्दर्पणे संददर्श,
पश्यन् पश्यन रतिसमतनुं मूर्च्छितो भुव्यपप्तत् ॥ ४३ ॥

सारांश यह है कि उस राजा ने कुछ ऐसा योग दिया कि चाकर लोग पद्मिनी को खिड़की में ले आये। बादशाह ने उस की तसवीर दर्पण में देखी और सुन्दर रति के समान रूप को देखता देखता मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

राजा रत्नः सरलहृदयः शत्रुमायां न जज्ञौ,
कृत्वाऽऽतिथ्यं झटितिशिबिरं प्रैषयद् यावनेन्द्रम् ।
ये ये पूर्वं गिरिषु निहिता गुप्तरीत्या भटास्ते
राज्ञः चम्वा उपरि पतिता आक्रमन्ताथ दुर्गम् ॥ ४४ ॥

सरल हृदय राजा रत्न सेन ने शत्रु की चाल को न समझा। और बादशाह को सुश्रुषा के साथ उसके शिविर में भेज दिया। पहले से पहाड़ों में उसने अपने सिपाही छिपा रक्खे थे। वे राजा की सेना पर टूट पड़े और किले को घेर लिया।

सिंहः सुप्तो यदपि बलवान् बध्यते तुच्छलोकैः,
वह्निः सुप्तो दहनगुणवान् लङ्घ्यते क्षुद्रजीवैः ।
सर्पः सुप्तो विषमविषयुग् जीयते मूषिकाभि-
र्दैवं सुप्तं नयति दुरितैः प्राणिनः सर्वनाशम् ॥ ४५ ॥

सोये हुये बलवान् शेर को भी छोटे लोग बाँध लेते हैं, जलाने वाली सोई हुई अग्नि को क्षुद्र जीव लांघ जाते हैं, सोये हुये विषधर सांप को चुहियाँ भी जीत लेती हैं। सोया हुआ भाग्य प्राणियों का विपत्तियों द्वारा नाश कर देता है।

चित्तौडस्य प्रहरणधरा येतिरेऽरीन्निरोध्दुं
तेषां शौर्यात् किमपि तु फलं नैव संजातमिष्टम् ।
"गोरा-बादल्" प्रमुख सुभटा आहवे त्यक्तदेहा—
स्तद्देशस्य प्रलय-कु-कथामद्यपर्यन्तमाहुः ॥ ४६ ॥

चित्तौड़ के वीर सैनिकों ने शत्रुओं के रोकने का बहुत यत्न किया। परन्तु उन की वीरता का कोई अभीष्ट फल न निकला। गोरा बादल आदि वीर पुरुष युद्ध में मारे गये। और उनकी मृत्यु देश की प्रलय रूपी अनिष्ट कहानी को आज तक कह रही है।

पद्मिन्येतन्नगरपतनं चिन्तया खल्वदर्शत्,
भीता तन्वी यमसमरिपोः पापदृष्टि-प्रहारात् ।
किं कुर्युस्ते नरतनुधरा राक्षसा नारकीया
शंके नस्याद् विमलचरितं कालिमालिप्तमेतत् ॥ ४७ ॥

पद्मिनी ने नगर के इस पतन को चिंता की दृष्टि से देखा। वह कृशाङ्गी यम के समान शत्रु की पाप दृष्टि के प्रहार से डर गई "न जाने ये मनुष्य का रूप रक्खे हुये नारकी राक्षस क्या कर डालें। मैं डरती हूँ कि कहीं मेरे इस विमल चरित में कालिमा न लगजाये।

(नोट — अदर्शद्-इरितो वा इति विकल्पेन अङ्पक्षे रूपम्)

अल्लादीनः कुसुमितमुखोऽन्तः प्रवेशं ह्यकार्षी-
दाशापूर्णो विजयमुदितः पद्मिनीं द्रष्टुकामः ।
भस्मीभूताः सकल महिला वह्निकुण्डे प्रदीप्ते
तासांधूम्रो यवननृपतेरुत्थितः स्वागताय ॥४८॥

अलाउद्दीन ने प्रफुल्लवदन विजय की खुशी में आशा से पूर्ण, पद्मिनी के देखने का इच्छुक होकर किले के अन्दर प्रवेश किया। परन्तु सब देवियाँ आग में जल कर राख हो गईं। उनकी लाशों का धुआं बादशाह के स्वागत के लिये उठ रहा था।

खिल्जी-बंश-प्रभव-नरपाः शीघ्रमापुर्विनष्टिं,
पापीयांसो न हि सफलतां दीर्घकालं लभन्ते ।
खिल्जी नष्टस्तुगलककुलं तस्य जग्राह राज्यं,
सय्यद्-लोदी-कुल युगलकं तत्परस्ताच्छशास ॥४९॥

खिलजी वंश के राजे शीघ्र नष्ट हो गये, पापियों को बहुत देर तक सफलता नहीं मिलती, खिलजियों के नाश पर तुगलक वंश ने उनका राज लिया, फिर सय्यद और लोदी दो वंशों ने राज किया !

अफ्गानीयाः प्रथमयवनाः सव आसन् पठाना,
विद्या-धर्म व्रत शम-दया-सभ्यता-नीति शून्याः ।
आयुष्यल्पा नवशशिसमाः कान्तिमन्दाश्च वक्रा,
लोकान् स्वं बा नहि सुखयितुं सिद्धकामा अभूवन् ।५०।

पहले मुसल्मान राजे अफगानिस्तान के पठान थे । इनमें विद्या, धर्म, व्रत, शम, दया सभ्यता या नीति न थी । द्वितीया का नया चन्द्रमा थोड़ी ही देर चमकता है, उसकी रोशनी कम होती है और वह टेढ़ा होता है वैसे ही, पठान बादशाहों की आयु अल्प हुई, इनका तेज भी कम था और यह टेढ़े भी थे, यह न तो अपनें आप को ही सुखी बना सके न प्रजा को ।

हिन्दूभूपैः सह जनतया भ्रान्तिगर्ते पतद्भिः,
केन्द्रीभूतैर्निजनिजहिते सुष्ठुकालो न दृष्टः।
यस्मिन् भूयादरिदलवशात् संभवा देशमुक्तिः,
संस्थाप्यं वा पुनरपि नवं भारतीयं स्वराज्यम् ॥५१॥

हिन्दू राजे और हिन्दू जनता भ्रान्ति के गर्त में गिरी हुई थी। वे अपने अपने लाभ के लोभ में फँसे हुये थे। उन्हें ने इस सुअवसर को न ताड़ा जिससे देश के शत्रुओं के वंश से मोक्ष मिलती और भारतीय स्वराज्य की स्थापना हो सकती।

अत्रत्यानां नयनपथि यन्नागतं नः समीपा—
दीरानस्थो मुगलयुवको दृष्टवाँस्तच्च दूरात्।
दिल्लीशानां बलरहिततां भारतीयं च भेदं
दृष्ट्वा मत्वा स्वहितसमयं चाययौ बाबरोऽत्र ॥५२॥

जो बात हम यहां वालों को समीप से दिखाई न दी, उसको ईरान के एक मुगल युवक ने दूर से देख लिया। उसने देखा कि दिल्ली के बादशाहों में बल नहीं है। भारतवासियों में भेद भाव बहुत है। इसको उसने अपने हित का समय समझा और वह यहाँ आ गया।

इत्यार्योदये पठान राज्य नामा चतुर्थः सर्गः॥

अथ पञ्चमः सर्गः

ह्रासं गताः प्रगतयश्च कलाः सुशेत्रा,
राष्ट्रीयवृद्धिसुकराश्च पठानकाले ।
तापत्रयेण विविधा भुविभाररूपाः,
संतेपिरे भरतखण्डनिवासिलोकाः ॥१॥

पठान काल में राष्ट्रीय उन्नति में सहायता देने वाली सुखकारक प्रगतियों और कलाओं का ह्रास हो गया और विविध भारतवासी भूमि का भार होकर तीन तापों से पीड़ित हो गये ।

[टिप्पणी—सुशेवः इणशीङ्भ्यां वन् (उ० सू० १।१५०) इति शेव शब्दो वन् प्रत्ययान्तः सुशेवः सुसुखः—देखो सायणभाष्य ऋ० १।२७।२]

आगत्य पश्चिमतटस्थगिरिप्रदेशा-
च्छिक्षा-विहीन धनकाङ्क्षि-मतान्धजातिः ।
राज्य-प्रबन्धकरणे बहुधाऽसमर्था,
जग्राह राहुरिव देशमखण्डमिन्दुम् ॥२॥

पश्चिमी सीमा प्रदेश की पहाड़ियों से आकर इस शिक्षा-शून्य, धनकी लोभी, मतान्ध जाति ने जो प्रायः राजप्रबन्ध करने में असमर्थ

थी समस्त देश को इस प्रकार ले लिया जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है।

प्राचीनभूपकुलजैः कुलचिह्नमात्रै-
र्यद्यप्यकारि बहुशः प्रयतिः समन्तात्।
रोद्धुं पठान-पद-पांसुदलान्धवातं,
साफल्यमाप किल काऽपि न तत् प्रयासः ॥३॥

पुराने राजवंशों ने जो अब केवल अपने कुल के झण्डा मात्र रह गये थे चारों ओर से बहुत कुछ कोशिश [प्रयतिः—ऋग्वेद १०।-१२१।५ प्रयतिः—प्रयतिता (सायण) = will, effort Apte] पठानों के पैरों से उठी हुई धूल की आंधी को रोकने की की। परन्तु वह कोशिश बेकार गई।

स्नेहे गते त्यजति दीप-शिखा प्रकाशं
स्नेहे गते भवति नाम 'खली' तिलस्य।
स्नेहे गते चरति शत्रुवदेव बन्धुः
स्नेहे गते पतति वैरिकरेषु राज्यम् ॥४॥

स्नेह (तेल) रहने पर दिया की लौ प्रकाश को त्याग देती है, स्नेह (तेल) निकल जाने पर तिल का महत्त्व चला जाता है और उसको लोग 'खली' के अपमान सूचक नाम से पुकारते हैं। स्नेह

७

(प्रेम) के न रहने पर भाई भी शत्रु के समान व्यवहार करता है। जब स्नेह (संगठन) नहीं रहता तो राज्य शत्रु के हाथ में जा गिरता है।

आसन्ननेकनरपा बलिनश्च योग्या
येषां सुबद्धघटने पुनरेवदेशः।
उत्थाय शत्रुकरपाशविमोचनेन
प्राप्स्यत् स्वपूर्वगुरुतां सुखशान्तियुक्ताम् ॥५॥

उस समय ऐसे योग्य बलवान् राजे थे जिनके प्रबन्ध में देश एक बार फिर शत्रु के हाथ से छूट कर सुख और शान्तिवाली पहली महत्ता को प्राप्त हो जाता।

तेषां परन्तु परतंत्रपरा कुनीति-
स्तान् स्वार्थ-वैर-कलहान् गमयाञ्चकार।
मिथ्याभिमान कुल-वंश परम्पराजै-
र्दोषैर्न जेतुमरिवर्गमशक्नुवंस्ते ॥६॥

परन्तु उनकी गुलामी की नीति ने उनमें स्वार्थ, वैर और कलह उत्पन्न कर दी। मिथ्या अभिमान तथा अपने वंश या कुल की परम्परा से उत्पन्न हुये दोषों के कारण वे अपने शत्रुओं को जीत न सके।

आसीत् तदैकमुगलः किल बाबराख्य
ईरान-राज कुलजः कुशलो नयज्ञः ।
निर्वासितो निजगृहात् स्वजनैः शिशुत्वे
कालान्तरेण किल काबुलमाजगाम ॥७॥

उस समय ईरान के राजवंश में उत्पन्न हुआ एक कुशल, नीतिज्ञ बाबर नाम का मुगल था। उसको बचपन में ही उसके सम्बन्धियों ने घर से निकाल दिया था। समय पाकर वह काबुल आ गया।

आकर्ण्य तत्र बलहीनदशां सुवीरो
दिल्लीश्वरस्य हतवीर्यपराक्रमस्य ।
हिन्दूनराधिपगणस्य मिथश्च वैरं
जेतुं स सिंह इव भारतवर्षमापत् ॥८॥

उस वीर ने काबुल में सुना कि दिल्ली के बादशाह में कुछ भी बल नहीं है और हिन्दू राजे आपस में एक दूसरे के वैरी हैं। इसलिये वह भारतवर्ष को जीतने के लिये सिंह के समान आ टूटा।

इब्राहिमेन सह तस्य बभूव युद्धं
पानीपतस्य समराङ्गणभूमिभागे ।
हत्वा पठाननृपतिं च विजित्य दिल्लीं
दिल्ल्या अरिः समभवत् पतिरेव दिल्ल्याः ॥९॥

पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी के साथ उसका युद्ध हुआ। पठान बादशाह को मार कर और दिल्ली को जीत कर वह बाबर जो दिल्ली का शत्रु बनकर आया था अब दिल्ली का मालिक बन गया।

दृष्ट्वा परन्तु नव लब्ध-विशाल-राज्यं
सर्वासु दिक्षु रिपुभिः परिवेष्टितं सः।
मृत्योर्मुखस्यतटिनीतटवृक्षवच्च,
मत्वा त्वगुप्तमिति यत्नपरो बभूव ॥१०॥

परन्तु उसने देखा कि मेरा नया प्राप्त किया हुआ विशाल राज्य चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ उसी प्रकार मृत्यु के मुख में है जैसे नदी के तट का वृक्ष। उसने समझा कि यह राज्य तो सुरक्षित नहीं है। अतः वह प्रयत्नशील हो गया।

संग्रामसिंह इति नामक सूर्य्यवंश्यः,
आसीत्तदा जनपदाधिप एक आर्यः।
आदर्शवीर-रणधीर सुरेतरारि-
र्घोषेण यस्य युधि वैरिचमूश्चकम्पे ॥११॥

उस समय सूर्य्यवंशी एक संग्रामसिंह नामी आर्य्य राजा था वह आदर्शवीर था। रण में धीर था। और देवताओं के शत्रुओं का शत्रु था। युद्ध में उसकी आवाज़ से वैरियों की सेना काँप जाती थी।

पृष्ठं ददर्श विदथेषु भयङ्करेषु
कुत्रापि कोऽपि नहि तस्य कदापि राज्ञः ।
वीरोचितानि रिपुशस्त्र-कृतक्षतानि
वक्षःस्थलेऽस्य नवविद्रुमवद् विरेजुः ॥१२॥

भयङ्कर युद्धों में किसी ने कहीं कभी इस राजा की पीठ नहीं देखी थी। उसकी छाती पर शत्रुओं के शस्त्रों से किये हुये वीरोचित घाव नये मूंगे के समान चमकते थे।

आदाय सैन्यमतुलं मुगलाधिपालः
संग्रामसिंहविजयाय ततः प्रतस्थे ।
श्रुत्वा तु तस्य नृपतेर्बलवीर्यगाथां
जातं भयं सपदि चेतसि बाबरस्य ॥१३॥

संग्रामसिंह को जीतने के लिये मुगल बादशाह बहुत सी सेना लेकर दिल्ली से चल पड़ा। परन्तु इस राजा के बल और पराक्रम की कहानी सुनकर बाबर के चित्त में भय उत्पन्न हो गया।

द्वारे विलोक्य महतीं मुगलस्य सेनां
दुर्योधनैर्भटगणैः सह वीर राणा ।
गोपायितुं भरतखण्डममेध्यहस्तात्
संग्रामसिंहपदमर्थयुतं चकार ॥१४॥

मुगल राजा की बड़ी सेना को दरवाजे पर देखकर वीर राणा ने बहादुर सैनिकों को साथ लेकर देश को अपवित्र हाथों से छुड़ाने के लिये अपना संग्राम सिंह नाम (युद्ध का शेर) चरितार्थ कर दिया।

रोगो यथैव तनुजो विफलीकरोति
सर्वान् गुणांश्च पुरुषार्थपरस्य लोके ।
एवं जनस्य मनसो भ्रमयुक्तभावा
बुद्धिं बलं च सहसा गमयन्ति नाशम् ॥१५॥

जैसे लोक में देखा जाता है कि शरीर से उत्पन्न हुआ रोग पुरुषार्थी के सब गुणों को बेकार कर देता है उसी प्रकार मनुष्य के मन के भ्रमपूर्ण भाव उसकी बुद्धि और बल को नष्ट कर देते हैं।

यद्यप्यभूत् स नृपतिर्बलिनां बलिष्ठो
ज्योतिर्विदा निगदितं कुमुहूर्तमेतत् ।
युद्धं न कार्य्यमधुना भवतेति राजा
शङ्कावसन्नहृदयो न ययौ न तस्थौ ॥१६॥

यद्यपि यह राजा बलियों में बली था एक ज्योतिषी ने इस को कह दिया कि राजा मुहूर्त अच्छा नहीं है इस समय युद्ध न करना। यह सुनकर राजा इतना शंकित हुआ कि न वह आगे बढ़ सका न ठहरसका।

आकर्ण्य तस्य मुगलः कुमुहूर्तवार्त्ता-
मानन्दपूर्णमनसा पुरतो दधाव।
राजाऽपि तां शिरसि वीक्ष्य चमूं च शत्रो—
र्जागार सुप्तमृगराजसमः सकोपम् ॥१७॥

मुगल बादशाह ने जब यह कुमुहूर्त्त की बात सुनी तो आनन्द पूर्ण मन से आगे बढ़ चला। शत्रु की सेना को सिर पर देख कर राजा भी सोते हुये सिंह के समान कोप से जाग पड़ा।

देशस्य सर्वघटनासु गरीयसीषु
संग्राम-बाबर-रणं तु महत्त्वपूर्णम्।
यस्मिन् प्रपञ्च-पट-वायक-पाणि-सूतो
दासत्व-पाश-निकरो दृढतामवाप ॥१८॥

देश की सब बड़ी घटनाओं में संग्रामसिंह और बाबर की लड़ाई बड़ी महत्त्वपूर्ण है। जिसमें प्रपंचरूपी पट के बुनने वाले दैव के हाथ से बुना हुआ गुलामी के जालों का समूह और दृढ़ हो गया।

यावत् स योद्धुमघटिष्ट हि बाबरेण
तद्देशवासिगणपा ददृशुः सुदूरात्।
संरक्षणं कठिनमस्ति परस्य घातात्
संयुक्त-कार्य-करणं नहि यत्र नीतिः ॥१९॥

जब संग्राम सिंह बाबर से जुट रहा था उसके देशवासी राजे दूर से तमाशा देख रहे थे। जहाँ मिलकर काम करने की नीति नहीं होती वहाँ शत्रु के आक्रमण से रक्षा करना कठिन होता है।

इत्थं कृतो हि समरः समरान्तकेन
शत्रोर्दलानि दलितानि समस्तदिक्षु ।
यावद्धि तस्य मुगलस्य चमूः समग्रा
संग्राम-कोप-दहने शलभायते स्म ॥२०॥

युद्ध के यमराज संग्राम सिंह ने ऐसा युद्ध किया कि सब दिशाओं में शत्रु के दल मारे गये। यहां तक कि संग्रामसिंह के कोप की अग्नि में उस मुगल की सब सेना पतंगे के समान जल गई।

दृष्टं क्षणं हि मुगलेन समस्तदृश्यं
चिन्तानिमग्नहृदयः क्षणमेव तस्थौ ।
पक्षे ददर्श निधनस्य गभीरगर्तं
पक्षान्तरे च जय-भूध-तुङ्ग-शृङ्गम् ॥२१॥

बाबर ने क्षणभर समस्त दृश्य देखा। क्षण भर चिन्ता में डूबा हुआ ठहरा। एक ओर उस को मौत का गहरा गार दिखाई पड़ा और दूसरी ओर विजय के पहाड़ की ऊँची चोटी।

आशैशवाद्धि खलु बाबरभूमिपस्य,
सोढुं विपत्तिमभवत् सहजःस्वभावः ।
आरंभ एव पितरौ त्यजतः सुतं यं,
तं प्रायशोहि कुरुते बलवन्तमीशः ॥ २२ ॥

बचपन से ही बाबर का स्वभाव विपत्ति सहन करने का बन गया था। जिस लड़के को उसके माता पिता बालकपन में ही छोड़ कर मर जाते हैं प्रायः ईश्वर उस को बलवान् बना देता है।

ज्योतिर्विदा कथित पूर्व मुहूर्त्त वार्त्तां
स्मृत्वा व्यजायत नवा हृदये तदाशा ।
संगृह्य तां विकलितामखिलां स्वसेनां,
रुष्टश्रियःप्रशमनाय कटिं बबन्ध ॥ २३ ॥

ज्योतिषी की कही हुई मुहूर्त की बात को याद करके उसके हृदय में नई आशा उठ खड़ी हुई। उसने अपनी सब बिखरी हुई सेना को एकत्रित करके कुपित लक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिये कमर बाँध ली।

विद्युल्लतेव भवति क्षणिका जयश्री-
स्तुष्टाक्षणं प्रकुपिता क्षणमात्रमेव ।
संग्रामसिंहमतिरिच्य पलान्तरे सा
वाराङ्गनेव मुगलाधिपमालिलिङ्ग ॥ २४ ॥

विजय श्री बिजली के समान क्षणिक होती है। क्षण में खुश, क्षण में नाखुश। एक पल में ही वह संग्रामसिंह को छोड़कर वेश्या के समान बाबर से जा लिपटी।

आघातमेकमरिबाणकृतं नरेन्द्रो
मर्मस्थलेऽलभत भूमितलं ययौ च।
आदित्यवंशमुकुटस्य पराभवेन
लज्जावशाद् दिनकरोऽपि मुखं तिरोधात् ॥२५॥

संग्रामसिंह राजा के शत्रु के बाण से मर्मस्थल में एक घाव लगा और वह भूमि पर आ गिरा। सूर्यवंश के मुकुट की इस पराजय को देखकर सूर्य ने भी लज्जा से अपना मुँह छिपा लिया (अर्थात् शाम हो गई)

अस्तं गतो भरतखण्डसुभाग्यभानु-
र्दुःखेन वेदवसुकोशशशाङ्क वर्षे।
दुर्दैव कोप तमसावृतदीर्घरात्रि-
र्नक्तंचरानुगतवृत्तिपराऽऽजगाम ॥ २६ ॥

भारतवर्ष के भाग्य का भानु १५८४ वि० (१५२७ ई०) में अस्त हो गया और दुर्भाग्य के कोप की अँधेरी रात आ गई जिसमें निशाचरी वृत्तियाँ उभर आईं।

राज्यं क्रमेण ववृधे खलु बाबरस्य,
हिन्दूप्रजाः समभवन्नधिनाथहीनाः।
सर्वे पठानगणपा अथ भारतीया
दिल्लीप्रभोः पदतलेऽनमयन् शिरांसि ॥२७॥

बाबर का राज्य धीरे धीरे बढ़ता गया। हिन्दूप्रजा अनाथ हो गई। पठान और हिन्दू सभी राजों ने दिल्ली के बादशाह के पैरों पर सिर झुका दिये।

वर्षत्रयं तदनु राज्यमकारि तेन,
बुद्ध्या, बलेन, दययाऽमितसाहसेन।
मृत्यौ च तस्य नृपतेस्तनयो हुमाँयुः,
सिंहासने स्वजनकस्य समारुरोह ॥२८॥

इसके पीछे बाबर ने बुद्धि, बल, दया और बड़े साहस के साथ तीन वर्ष और राज किया। उसके मरने पर उसका लड़का हुमाँयु अपने बाप की गद्दी पर बैठा।

कारुण्यमस्य नृपतेरभवत् स्वभावे,
तस्माद् विपक्षदलनं शिथिलोबभूव।
"शेराख्य" 'सूर' कुलजः सुभटः पठानः,
कालेन बाबर-सुतं च बहिश्चकार ॥२९॥

इस राजा के स्वभाव में करुणा बहुत थी। इस लिये शत्रुओं के दमन का काम ढीला पड़ गया। 'सू.' वंश के पठान वीर शेरशाह ने समय पाकर हुमांयु को बाहर निकाल दिया।

वर्षाणि पंच नय-विज्ञ-गुणज्ञ-गोप्ता,
दिल्ल्यां सुराज्यमकरोन्नृपशेरशाहः।
उद्दिश्य लोकहितमेव पतिः प्रजानां,
चक्रे सुशासनविधौ बहुशोधनानि ॥३०॥

इस नीतिज्ञ, चतुर, गुणग्राही, रक्षक राजा शेरशाह ने ५ वर्ष तक दिल्ली में राज किया। इस प्रजाओं के पति ने लोगों के लाभ की दृष्टि में रक्षक राज प्रबन्ध में बहुत से सुधार किये।

आसीत् स मुस्लिमनृपोऽपि न पक्षपाती,
हिन्दूजना अपि ततो न्यवसन् सुखेन।
सम्पादिता नृपतिना कृषिभूव्यवस्था,
घण्टापथो विहित उत्तरभारते च ॥३१॥

यह राजा मुसल्मान होते हुये भी पक्षपाती न था, हिन्दू लोग भी अब सुख से रहने लगे। इसने खेती की जमीन की पैमायश कराई, उत्तरी भारतवर्ष में एक बड़ी सड़क (Grand trunk road) बनवाई।

वर्षाणि पंचदश भाग्यहतो हुमाँयुः
पार्श्वस्थ देश-गिरिषु भ्रमणं चकार ।
ईरानदेशनृपतेः कृपया पुनः स
दिल्लीं विजेतुमिह सैन्ययुतः समागात् ॥३२॥

भाग्यहीन हुमाँयु १५ वर्ष पास के देशों के पहाड़ों में घूमता रहा, तत्पश्चात् ईरान देश के राजा की कृपा से सेना लेकर दिल्ली जीतने आ गया ।

सूरी-कुलस्य कलह-प्रिय-पुत्रपौत्राः
न्याय्यात् पथो विचलिता बल बुद्धि-हीनाः ।
पानीपते प्रदलिता मुगलाधिपेन,
दिल्लीसुराज्यमखिलं मुमुचुर्नितान्तम् ॥३३॥

सूरी वंश के कलह प्रिय पुत्र और पौत्र न्याय के मार्ग से विचलित और बल-बुद्धि हीन थे । पानीपत के मैदान में हुमाँयु ने उनको हरा दिया और उन्होंने दिल्ली का राज्य बिल्कुल छोड़ दिया ।

सिंहासनेऽथ विरराज पुनर्हुमाँयु-
र्भाग्ये न तस्य सुखभागमयुङ्क्त धाता ।
सोपानतोंऽघ्रिचलनाद् विनिपत्य भूमौ,
देहं विहाय परलोकमियाय शीघ्रम् ॥३४॥

अब हुमाँयु फिर दिल्ली की गद्दी पर बैठा। परन्तु विधाता ने उसके भाग्य में सुख नहीं लिखा था। सीढ़ी से उसका पैर फिसल गया और वह भूमि पर गिर गया। तथा देह को छोड़कर परलोक को सिधार गया।

मृत्यौ तु तस्ये नृपतेस्तनयो हुमाँयो-
र्बालश्चतुर्दशसमोऽ'कबरा' भिधानः।
बालार्ककान्तिसमकान्तिमयूखजालै-
र्देशस्य खेऽस्यतिमिरे पुरतश्चकाशे ॥३५॥

हुमांयु के मरने पर उसका चौदह वर्ष का लड़का अकबर नामी इस देश के अन्धेरे आकाश में ऐसा चमका जैसे प्रातः काल का सूर्य्य।

बाल्येऽपि तस्य पृथिवीश्वरबालकस्य,
साऽऽसीत् सुशासनविधौ प्रखरा सुबुद्धिः।
स्वल्पेऽपि तेन समये दमनं रिपूणां,
सम्पाद्य लोकसुखवृद्धिरकारि सम्यक् ॥३६॥

शासन के विषय में उस राजकुमार की बुद्धि ऐसी तीव्र थी कि थोड़े ही दिनों में उसने शत्रुओं का दमन करके प्रजा के सुख में अच्छी वृद्धि की।

आसीन्मतान्ध कुमतिर्नहि तस्य राज्ञो
राज्य-प्रबन्ध करणे किल तस्य दृष्टिः ।
संस्मृत्य तातसमयस्य दशां कुसाध्यां
जेतुं प्रजाजनमनांसि चकार यत्नम् ॥३७॥

अकबर मतान्ध नहीं था। वह राज्य का अच्छा प्रबन्ध चाहता था। उसे याद था कि उसके बाप के समय कैसी कुव्यवस्था हो गई थी। अतः उसने ऐसा यत्न किया कि प्रजा के हृदयों को जीत सके।

हिन्दू जनान् स नियुयोज पदेषु योग्यान्
प्राचानभूपकुलजैश्च चकार सन्धीन ।
तेषां व्युवाह कुलजा महिलाः सुभद्रा-
स्त्यक्तु च मुस्लिममतं कृतवाँस्स चेष्टाम् ॥३८॥

उसने पदों पर योग्य हिन्दू लोग नियुक्त किये, प्राचीन राजवंशों से सन्धियाँ कीं और उनकी अच्छी लड़कियों से विवाह किया। उसने मुसल्मानी मत को छोड़ने की भी चेष्टा की।

वेदानुगा हि भुवि सर्वजना अभूवन्
सर्वत्र पूर्व समये, न तु भेदभावः ।
अस्मिन् युगे प्रचरितानि मतानि नाना
हिन्दूजना पृथगिता जगतः समस्तात् ॥३९॥

पहले समय में सब लोग सब देशों में वेदानुयायी थे। कोई भेद-भाव नहीं था। इस युग में नाना मत हो गये और हिन्दू लोग शेष संसार से पृथक् हो गये।

हिन्दूकुलेतरजनाः स्वमतं विमुच्य
स्वीचक्रिरे जनतया नहि वेदधर्मे।
तत्कालधर्मधरणीधरविप्रवर्गा
आदातुमेनमधिपं स्वमते न शेकुः ॥४०॥

जो लोग हिन्दू कुल में उत्पन्न नहीं हुये उनको जनता की ओर से यह आज्ञा न थी कि अपना मत छोड़कर वैदिक धर्म स्वीकार कर सकें। इस लिये उस समय के धर्म धुरन्धर ब्राह्मण राजा अकबर को अपने धर्म में मिला न सके।

आसीद् विदूषकसमो नृपतेरमात्यो
हास्यप्रियः कुशलधीर्न तु तत्त्वविज्ञः।
प्रोक्तः स वीरबलनामधरो नृपेण
आदत्स्व मित्र सुपते तव वैदिके माम् ॥४१॥

उस समय अकबर के दरबार में एक विदूषक जैसा हंसमुख, बीरबल नामी वजीर था। वह चतुर तो था परन्तु वेदों के मर्म को नहीं समझता था। अकबर ने उससे कहा, 'हे मित्र, तुम मुझे अपने सुन्दर वैदिक धर्म में ले लो।

विप्रेण तेन गदितो मुगलाधिपोऽसौ,
प्रक्षालनेन भवतीह न गर्दभो गौः ।
हिन्दूमतेतरजनो नहि वेदधर्म
गृह्णाति भूपवर ! जन्मनि यत्नकोट्या ॥४२॥

बीरबल ब्राह्मण ने बादशाह से कहा, 'हे राजन् जैसे धोने से गधा गाय नहीं बन जाता अहिन्दू मत का आदमी इसी जन्म में करोड़ों यत्न करने पर भी वैदिक धर्मी नहीं बन सकता' ।

इत्थं पुनश्च नयहीनविमूढविप्रैः,
शास्त्रं पठद्भिरपि शास्त्ररहस्यशून्यैः ।
त्यक्तो विधातृदययाऽवसरः प्रदत्तो,
देशं विमोचयितुमार्य्य-विरोधिभावात् ॥४३॥

इस प्रकार शास्त्र पढ़े हुये परन्तु शास्त्र के रहस्य को न समझने वाले नीतिज्ञता-हीन मूढ़ ब्राह्मणों ने देश को अनार्य्य-भावों से मुक्त कराने का एक ऐसा सु-अवसर खो दिया जिसको ईश्वर ने बड़ी दया करके दिया था ।

आकाबुलात्प्रविततं दिशि पश्चिमस्यां
पौरस्त्य दिश्यखिलबंगततोच्चसीमम् ।
आविन्ध्य-भू प्रथितदक्षिणदिग् विभागं
राज्यं विशालमगमन् मुगलाधिपत्ये ॥४४॥

पश्चिम में काबुल से लेकर पूर्व में बंगाल तक, दक्षिण में विन्ध्याचल तक समस्त राज्य मुगल बादशाह के स्वत्व में आगया।

सूर्योद्भवाश्च शशिवंशधरा महीपा
राज्ञे ददुः स्वतनयाः सुसमादरेण।
'जोधां' प्रदाय तनयाय नृपस्य योद्धा
लेभे सुखं च पदवीं हत मानसिंहः ॥४५॥

सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजों ने मानपूर्वक बादशाह को लड़कियाँ दीं। योद्धा मानसिंह ने भी बादशाह के लड़के जहाँगीर के साथ जोधाबाई का विवाह करके सुख तथा पदवी प्राप्त थी।

चित्तौडराजकुलमान-धना नृपास्तु
संस्मृत्य पूर्वजयशांसि सुनिर्मलानि।
म्लेच्छस्य राज्यमसहन्त न तन्नियोक्त्रं,
कन्यां तथा स्वकुलजां न ददुश्च तस्मै ॥४६॥

चित्तौड़ राज के मानी राजाओं ने अपने पूर्वजों के निर्मल यश को याद करके म्लेच्छ के राज्य को सहन न किया। न उनकी आधीनता स्वीकार की न अपने कुल की कन्या बादशाह को दी।

मत्वाऽवमानमिति शाहवरेण कोपा-
च्चित्तौडराज्य दमनाय चमूर्नियुक्ता ।
चित्तौडराज्यदमने कृतकार्य्य आसीद्
राज्ञस्तु तस्य दमने बिफली बभूव ॥४७॥

बादशाह ने इस को अपना अपमान समझा और चित्तौड़ राज्य के लिये सेना नियुक्त की। चित्तौड़ राज्य को तो दबा लिया। परन्तु वहाँ के राजा को न दबा सका।

गोविप्रपश्च रविवंशरविर्महौजा-
स्त्राताऽऽर्य्य धर्मसुकृतेरविता व्रतानाम् ।
नाम्ना प्रताप इति मानधरः प्रतापी,
म्लेच्छाधिपेन सह योद्धुमियाय धीरः ॥४८॥

गौ और ब्राह्मण का पालक, सूर्य्यवंश का सूर्य्य तेजस्वी, आर्य्य-धर्म की सुकृति का रक्षक, व्रतों का पालक मानी और प्रतापी प्रताप सिंह मुसल्मान बादशाह से युद्ध करने आगे बढ़ा।

दिल्लीपतेः क्व पृतना महती विशाला,
संयोजिता सकलभारतवर्षदेशात् ।
क्वानीकिनी च लघुकायमरुस्थलस्य,
स्वल्पीयसी च समरायुधभारहीना ॥४९॥

कहाँ तो समस्त भारतवर्ष से इकट्ठी की हुई अकबर की सेना और कहाँ छोटे से मरु प्रदेश की सेना जिसके पास युद्ध की कोई सामग्री न थी।

एकः परन्तुदलयोरभवद् विभेद-
श्चित्तौड देशजनता युयुधे स्वभूम्यै।
स्वातंत्र्यजन्यबलमस्ति सदा गरीयो
दासाः कदापि नहि शक्तियुता भवन्ति ॥५०॥

परन्तु इन दोनों दलों में एक भेद था। चित्तौड़ के लोग अपनी मातृभूमि के लिये लड़ते थे। स्वतन्त्रता का बल सबसे बड़ा बल होता है। गुलाम कभी बलवान नहीं होते।

स्वाधीनतार्जितफलात्तरसो मनस्वी
धत्ते मनो न परदत्त सुखे धने वा।
स्वातंत्र्यवारिनिधिसोमसुधापिपासुः
प्राणान् जहाति सहते न तु पारवश्यम् ॥५१॥

स्वाधीनता से कमाये हुये फल का चखने वाला मनस्वी दूसरे के कमाये सुख या धन पर मन नहीं चलाता। स्वतंत्रता के समुद्र से निकले हुये अमृत का प्यासा प्राण दे देगा परन्तु परतंत्रता का सहन नहीं करेगा।

धन्या प्रतापजननी जनकीर्तनीया
यस्याः पवित्रजठराज् जनितः प्रतापः ।
तापत्रयात् स तपसा स्वजनान् विमोक्तुं
सर्वं विहाय यश एव धनं जुगोप ॥५२॥

धन्य थी प्रताप की माता, मनुष्यों में प्रशंसनीय, जिसके पवित्र पेट से प्रताप उत्पन्न हुआ। उसने तप के द्वारा अपनी प्रजा को तीनों तापों से छुड़ाने के लिये सब कुछ बलिदान कर दिया। केवल यश रूपी धन की रक्षा की।

अद्यापि भारतनिवासिनृणां मनःसु
नाम 'प्रताप' इति यच्छति विद्युदूर्मीन् ।
चित्तौडयुद्धकथनानि निशम्य भीता
उत्साहपूर्णहृदयास्तरसा वलन्ते ॥५३॥

आज भी भारतवासियों के हृदयों में प्रताप का नाम बिजली की लहर उत्पन्न कर देता है चित्तौड़ के युद्ध की कहानियाँ सुनकर डरपोक भी उत्साहपूर्ण हृदयों से उत्तेजित हो उठते है।

चित्तौडदेशधरणीतलताम्रपट्टे
भग्नेषु तुङ्गभुवनेषु तथेष्टकासु ।
रथ्योपलेषु सिकतासु पराक्रमस्य
गाथाः स्वरक्तलिखिताः सुभटैः सुवीरैः ॥५४॥

चित्तौड़ की धरती के ताम्रपटल पर, टूटे हुये महलों पर, और उनकी ईंटों पर, सड़कों के पत्थरों पर, उसकी धूली पर, वीर पुरुषों के रक्त से पराक्रम की कहानियाँ लिखी हुई हैं।

ये के मृताः क्षितिकृते न मृता भवन्ति
ये के गता भटगतिं न गता भवन्ति।
मृत्युं विजित्य सहसा, सहसा जनेभ्यो
मार्गं सुखं च सुगमं च निदर्शयन्ति ॥५५॥

जो देश के लिये मरते हैं वह मरते नहीं, जो वीरगति को प्राप्त होते हैं वे चले नहीं गये (अब भी जीवित हैं)। सहसा मृत्यु को जीतकर मनुष्यों के लिये अच्छे सुगम मार्ग को दिखलाते हैं।

तत्याज किं स्वतनयाय महान् प्रतापः,
राज्यं धनं न भवनं, व्रतमेकमेतत्।
मुच्येत यावदरिराहुकरान्न देश-
स्तावत् तृणेषु शयन ह्यशनं दलेषु ॥५६॥

महाराणा प्रताप ने अपने लड़के के लिए क्या छोड़ा! न राज्य न धन, न महल! केवल एक व्रत! वह क्या! जब तक शत्रु रूपी राहु के हाथ से देश न छूटे, तिनकों पर सोना और पत्तों में खाना।

अद्यापि पूर्वजकृतां कठिनां प्रतिज्ञां,
धीराः प्रतापकुलजाः परिपालयन्ति ।
यातेन दीर्घ समयेन न नूतनत्वं,
कुण्ठीकृतं भवति देशहितैषितायाः ॥५७॥

प्रताप कुल के धीर लोग अपने पुरुषों की की हुई इस कठिन प्रतिज्ञा का पालन करते हैं। अधिक समय बीतने पर भी देश हित की इच्छा का नयापन कुण्ठित नहीं होता।

आयातमीशकृपया सुमुहूर्तमेतद्
दिल्लीविदेशकरतः समवाप मुक्तिम् ।
गांधीमुनेश्च तपसा च नयप्रभावा-
दन्ते प्रतापशपथः सफलीबभूव ॥५८॥

ईश्वर की कृपा से ऐसा सुमुहूर्त आया कि दिल्ली को विदेशियों के हाथ से मुक्ति मिल गई। महात्मा गाँधी के तप और उनकी नीति के प्रभाव से राणा प्रताप की शपथ पूरी हो गई।

इत्यार्योदये चित्तौड प्रयाणो नाम पञ्चमः सर्गः ।

अथ षष्ठः सर्गः

यदास्तं संयातो रविकुलसरोजद्यु तिपतिः,
प्रतापः संतापो मुगलकुमुदानामुडुपतेः
निशायां नैतिक्यां तमसि रजनीशो द्यु तिमयः,
सुख दिल्यासन्यामकबरनरेशः समभवत् ॥ १ ॥

जब मुगल कुमुदों के चन्द्रमा 'अकबर' को संताप देने वाला रविकुल कमल दिवाकर राणा प्रताप मर गया तो राजनैतिक अंधेरी रात में अकबर नरेश रूपी चन्द्रमा सुख से दिल्ली की गद्दी पर विराजमान हुआ।

यथेन्दोः कौमुद्यामखिलमुडुजालं विगतभं,
तथैतद्देशीया अकबरसमक्षे हतबलाः।
सुबुद्धया सोऽकार्षीद्भुवि विततराज्यं बहुदिनं
प्रजाः प्रापुः शान्तिं सुखमुत धनं क्षेमकुशलम् ॥ २ ॥

जैसे चाँदनी रात में सितारे मन्द पड़ जाते हैं उसी प्रकार अकबर के सामने इस देश के राजा बलहीन हो गये। उसने पृथ्वी पर फैले हुये बड़े राज्य पर बुद्धिमत्ता से बहुत दिनों तक शासन किया। प्रजा को शान्ति, सुख, धन तथा क्षेम की प्राप्ति हुई।

स्वतंत्राया दृष्टेर्न शुभपरिणामः परिणतः
यथापूर्वं देशः परकरकृपापात्रमभवत् ।
समुन्नत्यै जातेर्न परजनराज्यं हितकरं
धनं वा सम्पत्तिः सुखयति न लोकान् परवशान् ॥ ३ ॥

परन्तु स्वतंत्रता की दृष्टि से तो कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला । देश पहले जैसा ही पराये हाथों का कृपा पात्र बना रहा । जाति के उत्थान में पराया राज हितकर नहीं होता । पराधीन लोगों को धन या सम्पत्ति सुख नहीं पहुँचा सकती ।

अनेके विद्वाँसो मुगलनृपते राजसदसि
समायानोरानादितरविषयेभ्यश्च सततम् ।
धरन्तोवैधर्म्यं स्वमत तननाय क्षितिभृतां
सहायत्वेनैवं सकलमवमन्तुं जनमतम् ॥ ४ ॥

ईरान देश से तथा अन्य देशों से मुगलों की राजसभा में अनेकों विद्वान आते रहे । वे दूसरे धर्म के थे और उनका प्रयोजन यह था कि राजों की सहायता से अपने मत को फैलावें और प्रजा के मत की अवहेलना करें ।

शनैः प्राचीना संस्कृतिरवमतोच्चैर्गुरुजनै—
र्विलुप्ता क्षीणा वा क्षितिरुह इवाद्भिर्विरहिताः ।
कला भूषा भाषा व्यवहृतिरथो नीतिविनया—
विमे सर्वे जाता नवयुगगतिभ्यो विकलिताः ॥ ५ ॥

उच्च पुरुषों से तिरस्कृत होकर पुरानी संस्कृति धीरे धीरे इस प्रकार लोप हो गई जैसे जल के विना वृक्ष सूख जाते हैं। कला, भूषा, भाषा, व्यवहार, नीति, विनय इन सब को नये युग की प्रगतियों ने विकलित कर दिया।

प्रचाराभावाद्वा श्रुतिविहितधर्मस्य सततं
प्रभावान्नैसर्गात् प्रमुखपुरुषाणां मतकृतात् ।
भयाद्वा लोभाद्वा भ्रमजनितदोषैरगणितैः
स्वधर्मं वै त्यक्त्वा यवनमतमीयुर्बहुनराः ॥ ६ ॥

वेद प्रचार के निरन्तर न होने से या प्रमुख पुरुषों के मत के स्वाभाविक प्रभाव से, या, भय या लोभ से या बहुत सी भ्रान्तियों से बहुत से लोग अपने धर्म को छोड़कर मुसल्मान हो गये।

यथोद्याने बीजं नयति पवनः कण्टकतरो—
र्यथाकालं चेदं भवति परितः कण्टकवनम् ।
तथैवास्मिन् देशे परमतगतानामथनृणां
प्रसूतिः संवृद्धिं जनबलविभूतावधिगता ॥ ७ ॥

जैसे पहले हवा बाग में कोई कांटे का बीज लाकर डाल देती है और कालान्तर में वहाँ कांटों का वन हो जाता है उसी प्रकार इस देश में भी मुसल्मान हुये लोगों की सन्तान जन बल और विभूति सम्पन्न हो गई।

शनैः संख्यावृद्धिर्मुसलिमनराणां समभवद्
गता न्यूनीभावं तदनु ननु सा हिन्दु-जनता।
विचारक्रान्तिश्चाकृत विकृतदोषं जनमते,
स्वदेशीया लोकाः परजनसमानं वव्रृतिरे ॥ ८ ॥

शनैः २ मुसल्मान बढ़ गये और हिन्दू कम होगये। विचारों की क्रान्ति ने लोकमत में विकार उत्पन्न कर दिया और देश के लोग भी परदेशियों के समान वर्तने लगे।

विदेशीया भाषा सदसि नृपतीनां प्रचलिता,
प्रजावर्गाश्चापि क्षितिपतिमनूचुः परवचः।
गिरा या देवानां परम-पद-लाभे हितकरी,
परित्यक्ता लोकैर्गदविकृतनेत्रैरिव रविः ॥९॥

राज दरबारों में विदेशी भाषा प्रचलित हो गई। और प्रजा वर्ग भी राजा का अनुकरण करके विदेशी भाषा बोलने लगे। मोक्ष की सहायक देव वाणी को लोगों ने ऐसे छोड़ दिया जैसे रोगी आंख सूर्य्य को छोड़ देती है।

नवीनाः सङ्कल्पा अथ नव विचारा नवमति—
र्नवीना आदर्शा नव चरितशैला नवगतिः ।
विशुद्धा या गङ्गा विततजलवाहा हिमवतो-
मिलित्वान्याम्भोभिः सपदि कलुषत्वं परिगता ॥१ ॥

नये संकल्प, नये विचार, नई मति, नये आदर्श, नई चरित्र शैली, नई गति । हिमालय की शुद्ध बहती हुई गंगा अन्य पानियों से मिल कर गन्दी हो गई ।

जहांगीरो नामाऽकबरतनयो राज्यकुशलः
पितुर्मृत्यौ सिंहासनमलभकार्षीत् ततनयः
सुरापानासक्तो मदनमदमत्तोऽपि चतुरः
स्वराज्यप्रस्तारं जनकनयमार्गेण कृतवान् ॥११॥

अकबर का लड़का जहाँगीर जो राज करने में कुशल और नयवान् था । बाप के मरने पर गद्दी पर बैठा । यद्यपि उसको शराब और विषय भोग की लत थी तो भी चतुर था । उसने अपने बाप के मार्ग पर चल कर राज को बढ़ाया ।

महाराज्यं दिल्ल्या मुगलनरपाणां सुसमये,
पराकाष्ठां लोके तदनु खलु कीर्तेरलभत ।
सुदूरस्था भूपा निजहित सुगुप्त्यै प्रतिनिधीन्
महामूल्यैरत्नैरिह निहितवन्तः सविनयम् ॥१२॥

मुगल बादशाहों के समय में दिल्ली का राज बहुत बढ़ गया और लोक में कीर्ति भी पराकाष्ठा को पहुँच गई, दूरस्थ देशों के राजे अपने हितों की रक्षा को दृष्टि में रखकर विनय के साथ कीमती तुहफों के साथ राजदूतों को दिल्ली में भेजने लगे।

यदा दिल्ली जाता सकलजगतः केन्द्रमतुलं,
श्रियो वा कीर्तेर्वा मुगलकुलजानां क्षितिभृताम्।
तदा यूरोपीया चिरदिवससुप्ता नरगणाः,
प्रबुद्धा निद्राया नयनमुदमीलन्निव शनैः ॥१३॥

जब दिल्ली समस्त जगत् में मुगल बादशाहों की श्री और कीर्ति का अतुल केन्द्र बना हुआ था उस समय बहुत काल से सोये हुये यूरोप वाले कुछ जाग से पड़े।

अतः पूर्वं तेषामधमतममासीत् स्थितिपदं,
विभूतौ ख्यातौ वा यशसि सुखराशावधिकृतौ।
न विद्या वाणिज्यं न च शुभकला शोभनमति—
नराणां सभ्यानां न च किमपि चिह्नं हितकरम् ॥१४॥

इससे पूर्व उनकी स्थिति बड़ी अधम थी। विभूति में भी और ख्याति, यश, सुख तथा अधिकार में भी। सभ्य लोगों का कोई भी हितकर चिह्न उनमें न था न विद्या, न व्यापार न कला और न विचार।

अविद्वांसः प्रायः सकलगुणहीना वनचरा—
इवातिष्ठन् सर्वे स्खलित चरिता मूढमतयः ।
जगज्ज्ञानाभावे खलुशुभविचारैर्विरहिता
विनिन्युः स्वंकालं कथमपि समानाः पशुगणैः ॥१५॥

उस समय यह यूरोपवासी अविद्वान, गुणहीन, चरित्रहीन, मूढ़ मति जंगलियों के समान रहते थे। संसार के ज्ञान का अभाव था। शुभ विचार नहीं थे। किसी प्रकार पशुओं के समान अपना जीवन बिताते थे।

परन्त्वस्मिन् काले समघटत चित्रैकघटना,
समग्रो यूरोपः खलु समुदतिष्ठत् क्षण इव ।
यथा प्रावृट्काले हरितदलवृक्षा मुकुलिता—
स्तथा यूरोपीया विकसितचरित्राः समभवन् ॥१६॥

परन्तु इस समय एक विचित्र घटना हुई। सकल यूरोप क्षण भर में उठ खड़ा हुआ। जैसे वर्षा में हरे हरे वृक्षों पर कोंपलें निकल आती हैं उसी प्रकार यूरोप वाले भी विकसित चरित्र वाले बन गये।

गता कृष्णा रात्रिर्दिवसधवलत्वं प्रविततं,
तमिस्रा निष्क्रान्ता समुदितपतङ्गं किल नभः ।
परित्यक्ताः शय्या अलसतनुलोकैरपि मुदा,
प्रतेनुः कार्य्याणि श्रमकुशलविज्ञा जनगणाः ॥१७॥

अंधेरी रात गई, दिन का उजाला फैल गया, अंधकार मिट गया। आकाश में सूर्य्य निकला। आलसियों ने भी खुशी से शय्यायें छोड़ दीं। श्रम में कुशल लोगों ने कार्य्य करना आरम्भ किया।

श्रमेण-त्यागेन प्रकृतिनियमानां सुविधिना
सुविज्ञैः स्वाध्यायो बहुभिरभियोगैरधिकृतः।
निगूढं यत्तत्त्वं विबुधपुरुषाणामविदितं
समायातं तत् तच्चकित-मनुज-ज्ञान-परिधिम् ॥१८॥

विद्वानों ने बहुत से परीक्षणों (Experiments) के साथ श्रम और त्याग पूर्वक विधि से प्रकृति के नियमों का अध्ययन किया। जो गूढ तत्त्व अब तक बड़े बड़े ज्ञानियों को भी ज्ञात न थे वे सब आश्चर्य-मय-मनुष्य के ज्ञान क्षेत्र में आ गये।

चिराद् यो यूरोपे परिचय-विशून्यो लघुतरः,
प्रतीच्यां दिश्येको लवण जलधौ द्वीपनिकरः।
असभ्यैरज्ञैर्वा पशुसहचरैर्वल्कलधरै—
ब्रिटन् नाम्ना ख्यातश्चिरकृतनिवासो झषचरैः ॥१९॥

यूरोप में पश्चिमी सागर में एक छोटा सा अज्ञात ब्रिटन (Briton) नामक द्वीप समूह था। इस में असभ्य, अज्ञ, पक्षीपोष, मछली खाने वाले जंगली रहा करते थे।

व्यतीयुर्वर्षाणां द्विदशशतकान्यद्य सकलं
यदात्वार्य्यावर्त्तं सनयमशिषद् विक्रमनृपः।
तदा रोमन् राज्य-प्रमुख पृतनेशो हतरिपु—
स्तृणं जूल्यससीजर् गज इव बृटन्द्वीपमजयत् ॥२०॥

दो हज़ार वर्ष हुये जब आर्य्यावर्त्त में विक्रमादित्य राजा नीति पूर्वक राजा करते थे तब रोमन राज के मुख्य सैनापति जूलियस सीज़र (Julius Caesar) ने ब्रिटेन द्वीप को ऐसे जीत लिया जैसे हाथी घास को कुचल डालता है।

तदारभ्य द्वीपो भवति शनकैरुन्नति मुखो
विदेशीयैर्भूपैरधिकगुणवद्भिः समुदितः।
अरण्यानि छित्त्वा समुचितपथस्ते विदधिरे
जलाढ्यान् भूभागान् क्रमश उदशून्यानकृषत ॥२१॥

तभी से इस द्वीप ने उन्नति की, अधिक गुण वाले विदेशी राजाओं ने इसे बढ़ाया। जंगल काटे, सड़कें बनाईं, और क्रमशः दल दल सुखाये।

कृषिर्वा व्यापाराः करकृतकला वा बहुविधा,
अशिक्ष्यन्तैतेषु ब्रिटिशमनुजा रोमननृपैः।
स्वरक्षायै द्वीपे प्रबल पृतनानां सुविधितः
पुरः स्थाने स्थाने सुदृढबल युक्ता विरचिताः ॥२२॥

कृषि, व्यापार और बहुत सी हाथ की कलायें, इन सब को रोमन राजों ने ब्रिटिश लोगों को सिखा दिया। और रक्षा के हेतु बड़ी बड़ी सेनाओं के स्थान स्थान पर मजबूत नगर बसा दिये।

यदा रोमन्राज्यं गृहकलहवह्नौ निपतितं,
तदीया याः सेना अवितुमिह तस्थुर्जन गणान्।
समग्रा आहूताः कुशलगृहपैः शासकगणै—
रनाथाः संजाताः खलु बृटनलोका हतबलाः ॥२३॥

जब रोमन राज्य घरेलू झगड़ों की आग में पड़ गया तो उनकी जो सेना ब्रिटन लोगों की रक्षा के लिये ब्रिटन में नियुक्त थी वह सब घर की रक्षा की चिन्ता करने वाले शासकों ने वापिस बुला ली। और विचारे ब्रिटन लोग अनाथ हो गये।

प्रवीणाः खल्वासन् दमनकरणे रोमननृपा
न तेषां साम्राज्ये जनबलविवृद्धिः समभवत्।
पराधीने देशे क्वचिदपि समर्था नहि जनाः
प्रजावर्गः प्रायः परमुखमुदैक्षिष्ट विपदि ॥२४॥

रोमन राजे दमन करने में बड़े निपुण थे। उनके राज में जनबल की वृद्धि न थी, पराधीन देश में जनता कभी प्रबल नहीं होती। विपत्ति में प्रायः प्रजावर्ग दूसरों का मुख तकने लगे।

यदा रक्षाशून्यं ददृशुरभितो देशमखिल—
मधावन्नादातुं तमरिगणगृध्राः शवमिव ।
समायाताः प्राच्या ननु सक-जटाँग्लप्रभृतय—
स्तथोदीच्याः स्कन्दा उदधिमवतीर्याप्रतिहताः ॥२५॥

जब देश को रक्षा रहित देखा तो उसको लेने के लिये शत्रु रूपी, गिद्ध ऐसे टूट पड़े जैसे लाश पर टूटते हैं। पूर्व की ओर से सक (सैक्सन), जट (जूट), आंग्ल (एंगिल्स) आये और उत्तर से स्कन्द (स्कैण्डी नेविया) के लोग समुद्र पार करके बेधड़क आ गये।

यथाकालं चेत्थं कतिपयजनाभिश्रणपरा
नवीनैका जातिः समभवदनेकैः शुभगुणैः ।
बलिष्ठा कर्मिष्ठा जनहितरता कार्य्यकुशला
नवीनैरुद्भावैरुदितसुविचारा धृतिमती ॥२६॥

थोड़े दिनों में इन कई जातियों के संमिश्रण से एक नई जाति अनेक शुभगुणों के साथ उत्पन्न हो गई, बलिष्ठ, कर्मिष्ठ, जनहित में रत, कुशल, नये विचार वाली, और धैर्ययुक्त।

इयं खल्वाङ्ग्लानामलभत यशो जातिरतुलं
समग्रे यूरोपे प्रथमपदमस्याः समभवत् ।
सुविज्ञा आङ्ग्लास्ते किल जलधियात्रास्वधिकृताः,
सुदूरस्थैर्देशैः सह सहजभावे कृतधियः ॥२७॥

अंगरेजों की इस जाति ने अतुल यश प्राप्त किया और यूरोप भर में इसका पहला दर्जा हो गया। यह ज्ञानी अंगरेज समुद्र यात्रा में निपुण हो गये और दूरस्थ देशों के साथ मैत्री करने की बुद्धि इनमें उत्पन्न हो गई।

जहाँगीरः सम्राडकबरतनूजो मुगलपो
यदा राज्यं चक्रे पितरमनु दिल्ल्यां शुभमतिः।
तदानीं राजासीद् बृटन-विषये लन्दन-पुरे
महाराजा जेम्सः प्रथम इति गीतोगुणरतः ॥२८॥

जब अकबर का लड़का मुगल बादशाह शुभ मति, जहाँगीर अपने बाप के पीछे दिल्ली में राज करने लगा उस समय ब्रिटन देश के लन्दन नगर में पहला जेम्स (James I) नामी गुणी राजा राज करता था।

सुनामा टामस् रो क्षितिपतिसभानीतिकुशलः,
स्वदेशप्रभ्वाज्ञां निजशिरसि धृत्वा सविनयम्।
स्वजातिव्यापारं सह भरतखण्डेन तनितुं,
समागच्छत् प्राप्तुं मुगलनृपतीनामनुमतिम् ॥२९॥

राज सभाओं की नीति में कुशल टामस रो (Thomas Roe) विनय पूर्वक अपने देश के राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपनी

जाति के व्यापार को भारतवर्ष के साथ करने के लिये मुगल बादशाह की अनुमति लेने यहाँ आया ।

जहाँगीरस्तुष्टो बृटन-नृप-सन्देशवचनै—
र्मिथः शिष्टाचारान् गुरुजनसमानान् निरदिशत् ।
स एवासीत् कालो यत उभयजात्योः स्थितिमयाद्
विशेषः सम्बन्धो बृटन-भरत-क्षित्युषितयोः ॥३०॥

जहाँगीर बृटन के राजा के सन्देश पाकर बहुत प्रसन्न हुआ, और बड़े जनों के समान शिष्टाचारों का प्रदर्शन किया । यह वही समय था जब से बृटन और भारत में रहने वाली दोनों जातियों में विशेष सम्बन्ध उत्पन्न हो गया ।

ददौ दिल्लीभूपो बृटननृप-दूताय विधिवद्,
धनं वस्त्रं मानं सुगमगमनायानसुविधाम् ।
अटित्वार्य्यावर्त्तं ददृशुरभितो दूतसुहृदो
विभूतिं देशीयां गुणमुत गुणाभावमखिलम् ॥३१॥

दिल्ली के बादशाह ने ब्रितानिया के राजदूत को विधिपूर्वक धन, वस्त्र, मान तथा आने जाने की सुविधायें दीं । राजदूत के साथी लोगों ने समस्त आर्य्यावर्त्त में फिर कर देश की विभूति तथा गुणों और दोषों को देखा ।

निशम्याख्यानं ते प्रतिनिधिमुखादाङ्गलजना
इहस्थानां भूतेर्भवन धन-धान्यस्य विधितः ।
अगच्छन्नाश्चर्यं विवृतमुखरोमाञ्चपुलका
विचार्य स्वावस्थां स्वरिति भरत-द्वीपमवदन् ॥३२॥

अंगरेज लोगों ने दूतों के मुख से विधिपूर्वक भारतवासियों की विभूति, मकान, धन, धान्य की कथायें सुनी और आश्चर्य से मुँह खोले, रोमांच खड़े किये अपनी अवस्था को विचार कर कहने लगे "ओहो, भारत द्वीप तो स्वर्ग है"।

ततस्ते भूयिष्ठां भरतभवभूत्या निजगृहा—
नलङ्कर्तुं चक्रुः सकलविधिचेष्टां हितमयीम् ।
समुद्रीयान् पोतान् श्रम-मनन-विज्ञान-सुकृतान्
समारुह्यागच्छन् भरतनृपभूमिं वसुमतीम् ॥३३॥

इसके पश्चात् उन्होंने अपने घरों को भारत की विभूति से अलंकृत करने की बहुत प्रकार की हितकर चेष्टा की। श्रम-मनन और विज्ञान द्वारा अच्छे अच्छे जहाज़ बनाकर उनमें चढ़कर धन वाली भारत भूमि में आगये।

सुदक्षा व्यापारे जलधितरणे कार्य्यकुशला,
मनोज्ञा लोकानां नृपगणसमक्षे युतकराः ।
कठोरा नम्रेषु प्रबलजनमध्ये समधियः,
प्रतेनुर्वाणिज्यं बहुषु नगरेष्वप्रतिहताः ॥३४॥

व्यापार में चतुर, समुद्र पार करने में कुशल, जनता के मन को समझने वाले, राजों के सामने हाथ जोड़कर खड़े होने वाले, नम्र लोगों के साथ कठोर, बलवानों के सामने बुद्धिमत्ता से बरतने वाले, अंगरेजों ने स्वच्छन्दता से बहुत से नगरों में अपना व्यापार बढ़ा लिया।

निवासो वाणिज्ये भवति कमलाया इति कथा,
प्रसिद्धा लोके तां, बृटनमनुजाः सिद्धिमनयन् ।
शनैर्द्वीपस्तेषामलभत धनस्य प्रचुरतां,
शनैरार्य्यावर्त्ते विविधमथ दारिद्र्यमविशत् ॥३५॥

लोक में प्रसिद्ध है कि व्यापार में लक्ष्मी रहती है। इसको अंगरेजों ने करके दिखा दिया। शनैः शनैः इंग्लैण्ड में धन बढ़ गया और आर्यावर्त्त में दरिद्रता आ गई।

गते वै पञ्चत्वं विषयिणि जहाँगीरनृपता—
वलब्धान्यान् भ्रातॄन् तदनु गमयित्वा यमपुरे ।
विशालं साम्राज्यं प्रथमतनुजातः शहजहां,
वितस्तार स्वत्वं विकटसमरैर्दक्षिणदिशि ॥३६॥

जब विषयी जहाँगीर बादशाह मर गया तो उसके ज्येष्ठ पुत्र शाहजहाँ ने अन्य भाइयों को मारकर विशाल साम्राज्य को प्राप्त करके दक्षिण दिशा में घोर युद्ध करके अपने स्वत्व का विस्तार किया।

महोत्तुङ्गाः शालाः क्षितिपतिरयं या रचितवान्,
प्रसिद्धा वास्तुत्वे, न तु भरत खण्डे, जगति च।
विशालाश्चित्रा वा मणिखचितभागैः शबलिताः,
कलाकारैः सिद्धैः सुविधिरचितास्ता मयसमैः ॥३७॥

इस बादशाह ने जो ऊँचे भवन बनाये वह अपनी मन्दिर निर्माण की कारीगरी के लिये न केवल भारतवर्ष में ही अपितु जगत् भर में प्रसिद्ध हैं, विशाल, आश्चर्यजनक, मणियों से जड़े हुये जिनको प्राचीन युग के प्रसिद्ध इंजिनियर "मय" से समान बुद्धिमान् कलाकारों ने विधिपूर्वक बनाया।

प्रसिद्धे द्वे शाले भवत इतरासां मुखसमे,
तयोरेका दिल्ल्यां विलसति मुदाद्यापि रुचिरा।
सुदुर्गे रक्तेऽसौ मुसल्मिमसुपूजागृहमिति,
युता "मोतीमस्जिद्" प्रखरतममुक्ताभिरभितः ॥३८॥

इन सब में दो भवन मुख्यतया प्रसिद्ध हैं। उन दोनों में से एक आज भी दिल्ली में शोभा दे रही है। वह लाल क़िले की मोती मस्जिद मुसल्मानों का पूजागृह है जिसमें चारों ओर से मोती लगे हुये हैं।

द्वितीया "ऽऽग्रा" मध्येऽसुलभसितपाषाणरचिता,
सुनाम्ना सम्राज्ञ्या जगति कथिता "ताजमहलम्" ।
शवं त्रातुं नाशात् क्षितिपतिमताऽसौ शवगृहं,
खपृष्ठे तिष्ठन्ती विहसति शरीरक्षणिकताम् ॥३९॥

दूसरी आगरे में दुर्लभ सफेद पत्थर की बनी हुई, रानी के नाम पर 'ताजमहल' कहलाती है। बादशाह तो इसको रोजा (शवगृह) कहता था और समझता था कि यहाँ लाश नाश से बच जायगी। परन्तु यह इमारत आकाश में खड़ी हुई शरीर के नश्वर होने के ऊपर हँसी कर रही है।

महाशालो राजा भवनरचनायां बहुधनं,
व्ययं चक्रे कोशान्मुसलिमकलायाः परिचये ।
स्वदेशीया शैली चिरविकसिताऽऽर्य्यैः सुकुशलैः,
क्रमेणास्तं याता गुरुजनविमोहच्छिथिलिता ॥४०॥

इस बड़े भवनों वाले बादशाह ने मुसलिम कला को फैलाने के लिये मकानों के बनाने में कोष से बहुत धन खर्च कर दिया। आर्य्यों ने बहुत युगों में जिस स्वदेशी शैली का विकास किया था वह बड़े पुरुषों के अज्ञान से शिथिल होकर अस्त हो गई।

कुरानादायाता अरबलिपिमध्ये सुखचिताः,
समग्राः कुड्यानामुपरि सुषमा-पूर्ण विधिभिः ।
यतन्ते मन्ये ताः प्रकटयितुमिस्लाममखिलं,
वदन्त्यङ्गीकर्तुं मुसलिममतं भारतनरान् ॥४१॥

सब दीवारों पर सुन्दर अरबी के अक्षरों में कुरान की आयतें (श्लोक) खुदी हुई हैं। मैं तो समझता हूँ कि यह पूर्ण इस्लाम धर्म का वर्णन करती हुई भारत के लोगों को मुसल्मान मत ग्रहण करने के लिये बुला रही हैं।

समग्रं साम्राज्यं यदपि लभतेस्म प्रथिततां—
मनेके वै दोषा विविशुरतिवेगान् नृपकुलम् ।
बृहत्त्वं कायानामवति नहि लोकान् निधनतो,
यदि स्यू रोगाणां प्रबलकृमयस्तेषु निहिताः ॥४२॥

यद्यपि सब मुगल साम्राज्य बहुत बढ़ गया तो भी राजकुल में बहुत से दोष जल्दी से घुस आये। यदि मनुष्यों के शरीरों में रोग के कीटाणु हों तो शरीर की स्थूलता उनको मौत से नहीं बचाती।

बभूवुश्चत्वारः क्षितिपतितनूजा बलयुता,
वयोज्येष्ठो "दारा" सरलकटुविद्वांश्च समदः ।
द्वितीयश्चौरङ्गो नृपतिपदकाङ्क्षी कुटिलधीः,
कनीयांसावास्तां किल शुजमुरादौ विषयिणौ ॥४३॥

शाहजहाँ के चार बलवान् लड़के थे। सब से बड़ा दारा, सरल, कटुभाषी, विद्वान् और अभिमानी था। दूसरा औरंगजेब कुटिल बुद्धि वाला राजा बनने का बड़ा इच्छुक। दो छोटे शुजा और मुराद थे। यह दोनों भोग विलास में लिप्त थे।

मिथस्तेषामासीत् परमरिपुता बाल्य-समया—
दनेके व्यायोगाः सदसि रचितास्तैर्हि सततम्।
सभायां राज्ये वा विमतिशकलत्वं सुविदितं,
विभक्ताः शङ्कातो नृपतिसुहृदो द्वन्द्वदलयोः ॥४४॥

इनमें बचपन से ही बड़ी शत्रुता थी। यह निरन्तर दरबार में षड्यंत्र रचा करते थे। दरबार और राज्य दोनों में कुमति से उत्पन्न हुआ भेद भाव दिखाई देता था। बादशाह के मित्र भी शंका में फँस कर दो भिन्न दलों में बँट गये थे।

पुराऽऽसंस्त्रेतायामवधपतिपुत्रा रविकुले,
महावीराः श्रेष्ठाः शुभचरितवन्तश्च गुणिनः।
मिथो भ्रातृस्नेहादनवरतभक्त्या पितरि ते,
जगच्छुभ्रं चक्रुर्महितयशसा स्वं जनिपथः ॥४५॥

पुराने त्रेता युग में सूर्यवंशी दशरथ राजा के वीर, श्रेष्ठ, चरित-वाले, गुणी पुत्र थे, परस्पर भ्रातृ प्रेम तथा निरन्तर पितृभक्ति द्वारा उन्होंने संसार को भी उज्वल किया और अपने जीवन को भी।

परन्त्वस्मिन्काले शहजहकुमारैः कुचरितै—
र्रविद्वद्भिर्धर्मं मुसलिममतान्धैर्मदयुतैः ।
दहद्भिः स्वार्थैर्वा किल कलहवह्निं निजकुले,
कृतं राज्यं नष्टं, सकलनरजातिः कलुषिता ॥४६॥

परन्तु इस युग में शाहजहाँ के कुचरित्र, धर्म से अनभिज्ञ, मुसल्मानी मत में अन्धे और अभिमानी लड़कों ने अपने कुल में स्वार्थवश होकर कलह की आग जलाकर राज्य भी नष्ट किया और मानव जाति को भी बदनाम किया ।

रुजाऽऽक्रान्तोऽकस्माच्छहजहनरेन्द्रः शिथिलित—
श्चिरं हर्म्ये दिल्ल्या अधिवसति शय्यांस्म सततम् ।
समायातुं शेके न हि सदसि सम्राण्नियमतः,
सभाकार्य्यं 'दारा' स्वपितुरनुमत्या च कृतवान् ॥४७॥

अकस्मात् शाहजहाँ बीमार होकर दुर्बल हो गया और लगातार महल में शय्या पर पड़ा रहा, नियम से दरबार में न आ सका । और पिता के परामर्श से दारा दरबार का काम करता रहा ।

तदानीं दुर्योगः समघटत राज्ये विधिवशाद्,
गतः स्वर्गं सम्राडिति कुटिललोकैर्मुखरितम् ।
मृषावादो देशे तडिदिव समग्रे प्रविततो,
ग्रहीतुं प्रत्येकं नृपतिपदमैच्छन नृपसुताः ॥४८॥

उस समय दुर्भाग्य से राज में एक दुर्घटना हो गई। बदमाशों ने यह खबर उड़ा दी कि राजा मर गया। यह झूठी खबर बिजली के समान देश भर में फैल गई और हर राजकुमार गद्दी छीनने की इच्छा करने लगा।

गवाक्षे निर्यातः प्रकटयितुमात्मानमभित—
स्तथाऽधावच् "चाऽऽग्रां" शमयितुमभिद्रोहमखिलम्।
निराकर्तुं भ्रान्तिं समयतत सम्राड् बहुविधं,
समाप्नोत् साफल्यं कथमपि न यत्नो नरपतेः ॥४९॥

अपने को जीवित सिद्ध करने के लिये शाहजहाँ पहले तो खिड़की में बाहर आया। फिर विद्रोह को शांत करने के लिये आगरे भागा। भ्रान्ति को मिटाने की बहुत कोशिश की परन्तु कोई उपाय सफल न हुआ।

विधौ वामे याते क्षरति गरलं चन्दनतरु—
र्विधौ वामे याते दहति पुरुषं शीतलजलम्।
विधौ वामे याते धरति तनुजः शत्रुतनुतां,
विधौ वामे याते भवति विपरीतं खलु जगत् ॥५०॥

तक़दीर उलटने पर चन्दन का वृक्ष विष उगलता है, ठंडा जल जलाने लगता है। पुत्र शत्रु हो जाता है। और समस्त संसार उलटा हो जाता है।

प्रतीच्या आयातो मदयुत "मुरादो" लघुतमः,
शुजो बङ्गप्रान्ताद् बहुदलयुतो वामपथगः ।
द्वितीयश्चौरङ्गः कुटिलमनसा दक्षिणदिशः,
उदीच्या "दारा" स्यो रिपुदमनकामः पितृहितः ॥५१॥

पश्चिम से छोटा लड़का मुराद मद भरा हुआ आया। बंगाल से विद्रोही शुजा बड़ी सेना लेकर आया। दूसरा लड़का औरंगजेब बुरी भावना से दक्षिण देश से चला। उत्तर से पिता के हित को ध्यान में रखकर शत्रुओं को दमन के लिये "दारा" चला।

अनेकैः षड्यंत्रैश्छलबलकुचक्रैः कुकृतिभिः,
कुमारश्चौरङ्गो गृहसमरमध्ये विजितवान् ।
पितुर्मुक्तिं प्राप्तुं, न तु पितृ ऋणात् तेन बलिना,
पिता बन्दीचक्रे नरक सदृशे राजभवने ॥५२॥

अनेकों षड्यंत्रों, छल, बल, कुचक्र, कुकर्मों से औरङ्गजेब लड़ाई में जीत गया। उस बली ने पिता से छुटकारा पाने के लिये, न कि पितृ ऋण से, पिता को नरक समान राज भवन में कैद कर दिया।

विधातुं तातस्य स्वदनकटुतां तां कटुतरां,
सपुत्रान स्वभ्रातन् विजयमदमत्तः स हतवान ।
अजानन् जानन् वा वरुणकरपाशान् बलवतः,
न येभ्यः संत्राणं भवति मनुजानां कथमपि ॥५३॥

बाप के कष्टों की कड़वाहट को और अधिक कड़वा बनाने के लिये विजय के घमण्डी औरङ्गजेब ने अपने भाइयों को और उनके पुत्रों को मरवा डाला। मालूम नहीं कि उसे वरुण देवता के बलयुक्त पाशों का पता था या नहीं था जिनसे किसी प्रकार भी मनुष्यों का छुटकारा नहीं हो सकता।

अरोदीत् तद्दृश्यं दलितहृदयो वीक्ष्य नृपति—
र्महाकष्टं सेहे कतिपयसमा जीवितमृतः।
स एव स्यात् पुत्रः पुदिति नरकात् त्रायत इति,
कुलाङ्गारौरङ्गः क्षिपति नरके स्वस्य पितरम् ॥५४॥

इस दृश्य को देखकर शाहजहाँ का हृदय फट गया। वह रो पड़ा। कई वर्षों तक जीता हुआ मरे के समान महाकष्ट भोगता रहा। पुत्र वह है जो पुत् नाम नरक से बाप को बचावे (देखो यास्क का निरुक्त) परन्तु कुलांगार औरङ्गजेब ने तो स्वयं अपने पिता को नरक में ढकेल दिया।

तनौ जातो रोगो जनयति विनाशं खलु तनोः,
समुत्पन्नोद्याने विदसति तरूँश्चामरलता।
स्थितो झंझावाते दहति गृहदीपो निजगृहं,
कुलोद्भूतो नाशं गमयति कुलं कुत्सितसुतः ॥५५॥

शरीर में उत्पन्न हुआ रोग शरीर को नाश करता है। बाग में पैदा हुई अमरबेल वृक्षों को सुखा देती है, आंधी में घर का दीपक भी घर को ही जला देता है। कुल में पैदा हुआ कपूत कुल को नष्ट कर देता है।

प्रवृद्धा दृश्यन्ते बहुश ऋजुमार्गाद् विचलिता,
अधर्मश्चारम्भे जगति फलतीवेति नृमतिः।
ध्रुवं त्वन्ते नाशो दुरित पथभाजामथनृणाम्,
वशी दण्ड्यान् दण्डात् त्यजति न हि लोकान् कथमपि ॥५६॥

कई बार देखा जाता है कि सत्यमार्ग पर न चलने वाले लोग बढ़ जाते हैं। लोगों का मत है कि जगत् में आरंभ में अधर्म फलता है, परन्तु अन्त में तो बुरे चरित्र वालों का नाश ही होता है। वशी परमात्मा दण्ड के योग्य लोगों को कभी बिना दण्ड दिये छोड़ता नहीं।

सुदीर्घत्वं लेभे वयसि विजयित्वे च नृपति—
रविच्छिन्नो देशो मुगलपतिराज्ये सुमिलितः।
परन्त्वन्तदृष्ट्या मुगलकुलराज्य क्षयगतिः,
शनैस्तीव्रा जाता सरित इव वाहो नदमुखे ॥५७॥

विजय पाने के पश्चात् औरङ्गजेब बादशाह बहुत दिनों जीवित रहा। मुगल बादशाह के राज्य में समस्त देश मिल गया। लेकिन

भीतरी दृष्टि से तो मुगल राज के नाश की गति उसी प्रकार तेज़ हो गई जैसे समुद्र में गिरते समय नदी का प्रभाव तेज़ हो जाता है।

किलासीदौरङ्गः सुमतिरतिविद्वान् कुशलधी—
र्मतान्धत्वं चक्रे सकलगुणजालं कलुषितम्।
करोत्यन्नं सर्वं विषमयमभोज्यं विषलव—
स्तले छिद्रे जाते व्रजति घटमूल्यं लघुतलम् ॥५८॥

यद्यपि औरंगजेब सुबुद्धि और बहुत विद्वान् था। परन्तु मतान्धता ने उसके सब गुणों को दूषित कर दिया था। भोजन में एक छोटा सा बिन्दु भी विष का मिल जाय तो सब विष हो जाता है। घड़े के तले में छेद हो जाय तो घड़े का मूल्य घट जाता है।

समुत्पन्ना देशे प्रचुरबलयुक्ता रिपुगणाः,
समग्रं जग्धुर्यं मुगलकुल राज्यंघुण इव।
कृता यावज्जीवं कथमपि तु रोधो नृपतिना,
परं मृत्योः पश्चाज् झटिति पतनं राज्यमगमत् ॥५९॥

देश में बहुत से बली शत्रु उत्पन्न हो गये जिन्होंने घुन के समान मुगल राज्य को खा डाला। राजा जब तक जीता रहा किसी प्रकार रोक थाम करता रहा। उसके मरते ही राज्य का शीघ्र पतन हो गया।

इत्यार्योदये मुगलराज्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः।

अथ सप्तमः सर्गः

यदौरङ्गजेबो गतः स्वर्गलोकं,
विचित्रा किलासीद् दशा भारतस्य ।
चिराद् दासतादग्धचित्ताऽऽर्यजाति-
र्द्रुतं बन्धनेभ्यो मुमुक्षुर्बभूव ॥१॥

जब औरंगजेब मरा तो भारत की दशा विचित्र थी । बहुत दिनों से दासता से दग्धचित्त आर्य्य जाति के मन में शीघ्र ही बन्धनों से मुक्त होने की इच्छा उत्पन्न हो गई ।

अशान्तिर्ययाऽऽरब्धमौरङ्गराज्यं,
प्रवृद्धिं गता प्रत्यहं सा क्रमेण ।
समग्रेषु भागेषु विद्रोहवह्निः,
प्रजज्वाल वेगेन दावानलस्य ॥२॥

औरंगज़ेब का राज्य जिस अशान्ति से आरम्भ हुआ वह प्रतिदिन बढ़ती गई । सब भागों में गदर की आग दावानल के समान वेग से फैल गई ।

तदानीन्तनैः कैश्चिदज्ञातवंशैः,
पराजित्य पार्श्वस्थ-निःशक्तिलोकान् ।
भृशं कानिचिद् दक्षिणाख्ये प्रदेशे,
मुसल्मान-राज्यानि संस्थापितानि ॥३॥

उस समय के कुछ अज्ञातकुल के लोगों ने अपने पड़ोसी निर्बल मनुष्यों को हरा कर दक्षिण में कुछ मुसलमान राज्य बलात्कार स्थापित कर दिये।

प्रसिद्धे तु तेषामभूतां किल द्वे,
यदाख्यास्ति बीजापुरं गोलकुण्डा।
विजेतुं चिरात्ते यतन्तेस्मसर्वे,
सुदूरस्थ दिल्लीमहीपालबृन्दाः ॥४॥

उनमें दो राज्य मुख्य थे बीजापुर और गोलकुण्डा। उन दोनों को जीतने के लिये दूरस्थ दिल्ली के सभी बादशाह बहुत दिनों से यत्न करते रहे।

विशेषेण चौरङ्गजेबस्य पित्रा,
स्वयं तेन चैव कृतो घोरयत्नः।
विजित्यापि भूयो द्विषो विग्रहेषु,
ग्रहीतुं न ते शेकिरे दक्षिणाशाम् ॥५॥

विशेष रूप से औरंगजेब के पिता ने तथा स्वयं उसने घोर प्रयत्न किया। परन्तु युद्ध में कई वार शत्रु को पराजित करने पर भी ये लोग दक्षिण दिशा को ले न सके।

तदा तत्र शत्रुर्महाबाहुरेकः,
समुत्पन्न औरङ्गजेबस्य घाती।
निशम्यैव यन्नाम दिल्लीनरेन्द्र-
श्चकम्पे यथा वायुनाऽश्वत्थपत्रम् ॥६॥

उसी समय वहाँ एक बली शत्रु पैदा हो गया जो औरङ्गजेब का घाती था। और जिसके नाम को सुनते ही दिल्ली का बादशाह ऐसे काँप जाता था जैसे हवा से पीपल का पत्ता।

यदासीत् ततं दक्षिणे युद्धजालं,
महीपस्य दिल्ल्याश्च बीजापुरस्य।
तदैवास बीजापुराधीनदेशे,
लघुर्भूमिपः शाहजीनामधेयः ॥७॥

जब दक्षिण में दिल्ली और बीजापुर के बादशाहों में युद्ध छिड़ा हुआ था उन्हीं दिनों बीजापुर राज्य के आधीन शाहजी नाम का एक छोटा जमींदार था।

यथाऽजीजनद् देवपत्नी जयन्तं,
यथा चाञ्जना मारुतिं देवदूतम्।
तथाऽजीजनत् तस्य "जीजी" ति जाया,
"शिवाजी" ति गो-विप्र-देशत्रपुत्रम् ॥८॥

जैसे इन्द्राणी ने जयन्त उत्पन्न किया। जैसे अंजना ने राम के दूत हनुमान् को उत्पन्न किया, उसी प्रकार शाहजी की स्त्री जीजी बाई ने गौ, ब्राह्मण तथा देश का रक्षक शिवाजी नाम का पुत्र उत्पन्न किया।

विवेकी, बली, साहसी, बालकोऽसौ,
महाराष्ट्रदेशस्य बालार्क आसीत्।
समालोच्य बाल्येऽपि सर्वामवस्थां,
तमिस्रामपाकर्तुकामो बभूव ॥९॥

बधं गोकुलानां तथा विप्रहानं,
प्रजापीडनं मुस्लिमैर्राजवर्गैः ।
क्षयश्चावमानश्च हिन्दू जनानां,
क्षतिं संस्कृतेः पारवश्यं नितान्तम् ॥१०॥

वह बालक विवेकी, बली, साहसी, महाराष्ट्र देश का उगता हुआ सूर्य्य था। बालकपन में ही उसने सब अवस्था देख ली और अंधेरा दूर करने की इच्छा करने लगा।

वह अवस्था इस प्रकार थी :—गायें मारी जाती थीं, ब्राह्मणों की अवनति थी। मुसल्मान राजकर्मचारी प्रजा को पीड़ा देते थे। हिन्दुओं का क्षय और अपमान होता था। संस्कृत का ह्रास था। पूरी परतन्त्रता थी।

कुलाचारशिक्षोपदेशो जनन्या,
गताज्जन्मनश्चार्जिता बीज शक्तिः।
समग्रैश्चभावैः स्वतन्त्रत्वकामः,
शिवो बालकश्चोग्रगामी बभूव ॥११॥

कुल के आचार की शिक्षा, मा का उपदेश, पुराने जन्म के संस्कार, इन सब भावों की प्रेरणा से स्वतन्त्रता का इच्छुक बालक शिवाजी आगे वढ़ दिया।

समाहूय खेलास्थले ग्रामबालान्,
सुबुद्धिः शिवः क्रीडन-व्याजबुद्ध्या।
समारब्धवान् सैन्यलीलामवाच्यां,
स्वकं निर्ममे बालसेनापतिं च ॥१२॥

खेल के मैदान में गाँव के बालकों को बुलाकर बुद्धिमान् शिवाजी ने खेल के बहाने निर्दोष सेना लीला का खेल शुरू किया और अपने को सेनापति बना लिया।

यदा तेन कुत्रापि दृष्टं ह्यनिष्टं,
तदा तत्र सार्धं स्वकैर्मित्रवर्गैः।
समागत्य चक्रे प्रतीकार योगं,
शनैरर्जितं चैव बालाधिराज्यम् ॥१३॥

जब कहीं भी उसने कोई अत्याचार देखा, तभी वहीं अपने मित्रों को साथ लेकर उसका प्रतीकार कर दिया। धीरे-धीरे उसका एक प्रकार का बालराज्य हो गया।

समाकर्ण्य कृत्यानि विद्रोहजानि,
लघून्यप्यसह्यानि बालाधिपस्य।
प्रजिघ्युः प्रसङ्गात्मकं तस्यपित्रे,
व्युपालम्भनं शासकाः शंकितार्थाः ॥१४॥

इस बालक राजा के छोटे छोटे असह्य विद्रोहात्मक कृत्यों का हाल सुनकर शंकित शासकों ने प्रसंगवश उसके बाप के पास शिकायत भेजी।

न शेके परं कोऽपि रोद्धुं प्रवाहं,
गतेर्वाऽपि वृद्धेश्च यूनां वरस्य।
अदीर्घे हि काले शिवा-बालसेना,
महत्त्वं नृणां भीतिदं प्राप दिक्षु ॥१५॥

परन्तु इन जवानों के सरदार की गति या वृद्धि के प्रवाह को कोई रोक न सका। थोड़े दिनों में ही शिवाजी की बाल सेना चारों दिशाओं में लोगों को डराने वाली हो गई।

कुपित्वैकदा धृष्टतायाश्च सूनो-
स्तथा तस्य तातस्य संदिह्य तन्त्रम्।
महीपेन बीजापुरस्थेन बन्दी-
कृतः शाहजी तस्य पुत्रस्य दान्त्यै ॥१६॥

लड़के के उजड्डपन से रुष्ट होकर और उसके बाप की साजिश समझकर बीजापुर के राजा ने पुत्र का दमन करने के लिये शाहजी को कैद कर लिया।

अजन्त्याज्यमग्नौ न शान्त्यै सुविज्ञः,
अदम्या न कोपेन दम्या भवन्ति।
गजघ्ने कुले जातशार्दूलबालान्,
न गोमायवस्त्रासयन्त्यात्मरावैः ॥१७॥

बुद्धिमान् लोग आग को बुझाने के लिये उसमें घी नहीं छोड़ते। न दबने वाले लोग किसी के कोप से नहीं दबते। हाथी को हनन करने वाले कुल में पैदा होने वाले शेर के बच्चों को गीदड़ शोर करके नहीं डरा सकते।

शिवस्तातबन्दित्वमाकर्ण्य चक्रे,
सुविस्पष्टरूपेण विद्रोहवार्त्ताम्।
सुसंनह्य पार्श्वस्थितान् ग्रामवीरा-
ननेकानि राज्यस्य दुर्गाणि जह्ने ॥१८॥

शिवाजी ने पिता की कैद की बात सुन कर खुल्लमखुल्ला विद्रोह छेड़ दिया और पड़ोस के गाँवों के वीरों को इकट्ठा करके राज्य के कई किले छीन लिये।

तथौरङ्गजेबेन सार्द्धं नयज्ञो,
विरोधे हि बीजापुरस्याधिचक्रे।
सखित्वं, यतःकण्टकं कूटनीत्या
सुतीक्ष्णेन निष्काष्यते कण्टकेन ॥१९॥

और उस नीति के जानने वाले शिवाजी ने बीजापुर के विरुद्ध औरङ्गजेब से मैत्री कर ली क्योंकि कूट नीति से काँटे को उससे भी तेज काँटे से निकाला जाता है।

क्रमेणैत्यमेकेन शत्र्वोर्मिलित्वा,
द्वितीयेन वैरं शिवाजी चकार।
यदा व्यग्रहीष्टां मिथो द्वे दले ते,
तृतीयस्य लाभोऽभवन्निश्चितार्थः ॥२०॥

इस प्रकार बारी बारी से दो शत्रुओं में से एक से मिल कर शिवाजी ने दूसरे दल से युद्ध छेड़ दिया। जब वे दोनों दल आपस में लड़ पड़े तो तीसरे (अर्थात् शिवाजी) का लाभ निश्चित हो गया।

सगर्वं शिवा-नाश-ताम्बूल-हारी,
वयोवृद्ध-चातुर्ययुक्ताभिमानी।
महानफ्जलो मुख्यसेनाधिपालः,
प्रजिघ्ये नरेशेन बीजापुरस्य ॥२१॥

अभिमान के साथ शिवाजी के नाश का बीड़ा उठाने वाले बुड्ढे चतुर, अभिमानी मुख्य सेनाध्यक्ष अफजल खाँ को बीजापुर के राजा ने भेजा।

समादाय सेनां सुसज्जां चमूपः,
शिवं रोधयामास सर्वासु दिक्षु।
शिवो व्याघ्र-पश्चांगुली-शस्त्रहस्तो,
जघानच्छलेनाफ् जलं सिद्धकीर्तिः ॥२२॥

अफजल खाँ जनरल ने शिवाजी को चारों ओर से घेर लिया। परन्तु शिवाजी ने शेरपंजा हाथ में लेकर चालाकी से अफजल खाँ को मार डाला। इससे उसे कीर्ति प्राप्त हुई।

तथैवं च शायस्तखां नामधारी,
क्षितीशस्य दिल्ल्याः प्रमुख्याधिकारी।
यदा दक्षिणे जेतुमेनं समायात्,
सपुत्रो बलादाहतोऽसौ शिवेन ॥२३॥

इसी प्रकार जब दिल्ली के बादशाह का सरदार शायस्ता खाँ शिवाजी पर विजय प्राप्त करने के लिये दक्षिण में आया तो शिवाजी ने उसको और उसके पुत्र को आहत कर दिया।

अनेन प्रकारेण सर्वत्र देशे,
ततं दाक्षिणात्ये शिवस्य प्रभुत्वम्।
समूचुः सुरास्तस्य दृष्ट्वा भविष्यं,
शिवस्त्वं शिवस्त्वं शिवस्त्वं शिवस्त्वम् ॥२४॥

इस प्रकार दक्षिण भर में शिवाजी का प्रभुत्व छा गया। उसके भविष्य को देखकर देवता गण चिल्ला उठे 'तू शिव है, तू शिव है, तू शिव है"।

न दृष्टो यदोपाय ईशेन दिल्ल्याः,
शिवो येन वश्यो भवेत् तस्य राज्ञः।
प्रलोभं पुरस्तस्य चिक्षेप दातु-
मपूर्वं सभायां पदं साभिमानम् ॥२५॥

जब दिल्ली के बादशाह को शिवाजी के वश में करने का कोई उपाय न सूझा तो उसने शिवाजी को यह लोभ दिया कि मैं तुमको सभा में एक उच्च पद दे दूँगा।

मुहूर्तं शिवश्चिन्तयामास वार्ता,
व्रजेयं सभायां न वा छद्ममूर्त्तेः।
हता भ्रातरो येन तातो निबद्धो,
मया शत्रुणा किं न कुर्य्याद् दुरात्मा ॥२६॥

शिवाजी ने क्षणभर सोचा कि इस छली बादशाह की सभा में जाऊँ या न जाऊँ। जिसने भाई मार डाले और बाप को कैद कर लिया वह दुष्ट मुझ शत्रु के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता।

सुहृद्भिस्तु विश्वासितः सत्क्रियाभ्य-
स्तथाविश्वनाथं च संस्मृत्य भक्त्या।
जनन्यां प्रतिष्ठाप्य राज्यस्य भारं-
प्रतस्थे महातन्त्रणापूर्णयात्राम् ॥२७॥

उसके मित्रों ने विश्वास दिलाया कि तुम्हारा अवश्य सत्कार होगा। तब वह भक्ति से ईश्वर को स्मरण करके और राज्य का भार अपनी माता पर छोड़कर कठिन यात्रा पर चल पड़ा।

महीशोचितान्यान्यसभारयुक्तः,
सपुत्रः सहस्रैः वीरैश्च सार्धम्।
उदीच्युन्मुखो दक्षिणे लग्नचेता,
अनिच्छन्नपीच्छन् जगाम प्रसह्य ॥२८॥

राजा की शान के अनुकूल भिन्न-भिन्न सामान के साथ पुत्र और एक हजार वीरों को लेकर उत्तर की ओर मुख और दक्षिण में चित्त लगाकर चाहता हुआ भी न चाहता हुआ चलने को विवश हो गया।

अरण्यानि नद्यो नगश्रैणयो वा,
न विश्वस्य दिल्लीपतेः सन्धिमूले।
समग्रैः स्वकैः साधनैस्तस्य मार्गे,
व्यधुर्मित्र भावेन बाधा अनेकाः ॥२९॥

जंगल, नदी, पहाड़ की श्रेणियाँ। इन्होंने दिल्ली के बादशाह की सन्धि के बचनों पर विश्वास नहीं किया। अतः मित्र भाव से शिवाजी के मार्ग में बहुत सी बाधायें डालीं। (दक्षिण से दिल्ली का मार्ग विकट है)।

यदौरङ्गवादे गतो राजयात्री,
स्वयं शासको नागमत् स्वागताय।
सुतं प्रेष्य चामंत्रितस्तेनसार्धं,
सभार्यां शिवस्तेन सामान्यदृष्टया ॥३०॥

जब शिवाजी औरंगाबाद पहुँचा तो वहाँ का गवर्नर उसे स्वयं लेने न आया। अपितु अपने लड़के को सामान्यतया भेजा कि अपने साथ दरबार में ले आओ।

अपश्यच्छिवस्तत्र सम्मानहानि-
मुपेक्षां हि तां दण्डरूपां च मेने।
अगत्वा सभा निश्चितावासगेहे,
स्वसेनायुतः शान्तवृत्त्यैव तस्थौ ॥३१॥

इसमें शिवाजी ने समझा कि गवर्नर ने मेरी मानहानि की। इसका यही दण्ड है कि उपेक्षा की जाय। वह सभा में तो न गया। परन्तु सेना के साथ शान्ति से अतिथिगृह में ठहर गया।

अजागस्तदा शासको निद्रयेव,
'न साधारणोऽयं जनो दृश्यते मे''।
समागत्य तत्रैव नीत्या विनीत्या,
शिवं तोषयामास सम्मानपूर्वम् ॥३२॥

तब तो गर्वनर नींद से जाग सा पड़ा। सोचने लगा कि यह तो साधारण मनुष्य नहीं दीखता। स्वयं वहाँ आया और नीति तथा नम्रता से सम्मान के साथ शिवाजी को प्रसन्न कर लिया।

ततो यत्रकुत्राप्यगाद् दीनबन्धुः,
समस्तैर्जनैः पूजितोऽसौ समन्तात्।
विदेशीय तन्त्रं तु सर्वत्र दृष्ट्वा,
मनस्तस्य दुःखेन खिन्नत्वमाप ॥३३॥

अब तो वह दीनों का बन्धु शिवाजी जहाँ कहीं पहुँचा सबने उसका सत्कार किया। परन्तु उसने देखा कि सब जगह विदेशी राज है, इससे उसके मन को बहुत क्लेश हुआ।

क्वचिच्छासकान्यायजक्रोधतप्तः,
क्वचिच्छासिताशक्तताखेदखिन्नः।
अनेकानि दृश्यान्यनिष्टानि पश्यन्,
शनैर्राजधान्याः स सामीप्यमाप ॥३४॥

कहीं तो शासकों के अन्याय पर उसे क्रोध आया। कहीं प्रजा की लाचारी पर खेद हुआ। इसी प्रकार अनेकों अनिष्ट दृश्य देखते हुये शनैः शनैः वह राजधानी (दिल्ली) के समीप पहुँच गया।

तदासीन्नदिल्ल्यां स दिल्ली नरेन्द्रः,
अपित्वा"गरा" पत्तने तन्निवासः।
गतस्तत्र दुर्भाग्यकोपादपश्यद्,
यदत्रापतन् मक्षिका ग्रासमध्ये ॥३५॥

तब दिल्ली का बादशाह दिल्ली में न था, आगरे में था। जब शिवाजी आगरे में आया तो देखा कि यहाँ भी दुर्भाग्य से ग्रास में मक्खी पड़ गई।

उदासीनता स्वागतातिथ्यमाने,
नयाभिज्ञतावर्जितैर्राज मुख्यैः।
उपेक्षा च धर्मान्धदिल्लीश्वरस्य,
यशः कांक्षिणो मानसं संतुतोद ॥३६॥

स्वागत, आतिथ्य तथा मान में नीति से अनभिज्ञ राजकर्मचारियों की ओर से उदासीनता की गई। धर्मान्ध बादशाह ने भी उपेक्षा की। इससे यश के इच्छुक शिवाजी को बहुत दुःख हुआ।

सभायां यदा दर्शनायागतोऽसौ,
न शिष्टानि वाक्यानि सम्राडुवाच।
प्रदत्तं विशिष्टं पदं वा न तस्मै,
न सम्मानवसांसि चैत्रार्पितानि ॥३७॥

जब वह दरबार में दर्शन के लिये आया तो बादशाह ने शिष्ट वाक्य भी न कहे। न दरबार में विशेष पद दिया गया। न खिलअत दी गई।

चिरं तत्र तिष्ठन्त्स तत्याज धैर्यं,
न सोढुं क्षमो मानहानिव्रणानि।
समुल्लङ्घ्य राज्ञां सभासंविधानं,
सकोपं स चान्यत्र गत्वा न्यषीदत् ॥३८॥

बहुत देर तक खड़े-खड़े उसका धैर्य छूट गया। मान हानि के घावों को सह न सका। राज दरबार के कायदों को तोड़कर वह क्रोध से दूर जाकर बैठ गया।

असम्मानभावाग्नितप्तारुणास्यं,
शिवं दूरतोऽपश्यदौरङ्गजेबः।
त्रिनेत्रस्य मन्ये तृतीयान्नु नेत्राद्,
विदग्धुं जगद् वह्निराविर्बभूव ॥३९॥

औरङ्गजेब ने दूर से देखा कि शिवाजी का मुख अनादर की आग से लाल हो रहा है। ऐसा प्रतीत हुआ कि शिवाजी के तीसरे नेत्र से जगत् को भस्म करने वाली अग्नि निकल रही है।

झटित्येव संप्रेषितं तेन राज्ञा,
शिवक्रोधशान्त्यै सुसम्मानवस्त्रम् ।
सपर्यां चकारान्यथा किन्तु कश्चिच्,
छिवं तोषयामास नैव प्रयत्नः ।।४०।।

बादशाह ने शिवाजी के क्रोध को शान्त करने के लिये झट से खिलअत भेजी। और अन्य प्रकार से भी आदर किया। परन्तु शिवाजी प्रसन्न न हुआ।

न दासो न दासत्वमङ्गीकरोमि,
न यास्याम्यहं तस्य राज्ञः सभायाम् ।
भवेदद्य चात्रापि कामं बधो मे,
यशःपण्य-संक्रीतमीहे न जीव्यम् ।।४१।।

मैं दास नहीं हूँ, न दासता स्वीकार करता हूँ, इस राजा की सभा में मैं जाने का नहीं। चाहे आज यहीं मार डाला जाऊँ। यश को बेचकर जीवन को खरीदना नहीं चाहता।

(जीव्यम् = जीवन **Life** देखो आप्टे का कोष।)

अनेनोग्रशार्दूलघोषेण सभ्याः,
क्षणं विस्मितास्ते समग्रा बभूवुः ।
अकर्तव्यता-धी-विभीता विमूढा-
स्ताडितास्ताडितैःशाखिभिः साम्यमीयुः ।।४२।।

उस उग्र शेर की गरज को सुनकर सब दरबारी भौचक्के रह गये। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या करना चाहिये। बिजली से मारे हुये वृक्षों की सी उनकी दशा हो गई।

अथ प्रेरितः कैश्चिदीर्ष्यालुलोकैः
शिवं भूपतिस्तत्र बन्दीचकार।
तथा सैनिकान् रक्षणज्ञानदक्षान्
न्ययौक्षीत् स कारागृहप्रेक्षणार्थम् ॥४३॥

कुछ ईर्ष्यालु मनुष्यों की प्रेरणा से बादशाह ने शिवाजी को कैद कर लिया और कैदखाने की देखभाल के लिये बड़े होशियार सैनिक नियत कर दिये।

अयःपंजरे वीक्ष्यशार्दूलराजं
प्रमोदाच्छृगालादयः केऽप्यनृत्यन्
अयासीत्तदारभ्य नौरङ्गजेबः
क्षणं शान्तिशय्यासुखं लेशमात्रम् ॥४४॥

शेर को पिंजड़े में देखकर कुछ शृगाल प्रकृति के लोग तो हर्ष से नाचने लगे परन्तु उस घड़ी से लेकर औरङ्गजेब को कभी क्षण भर भी सुख की नींद सोने का अवसर न मिला।

शिवस्तत्र मासत्रयं खल्वतिष्ठन्
न जानन् कथं मुच्यतां शत्रुपाशात्।
परन्त्वन्ततो दैवयोगेन मुक्त्यै
विधिं चिन्तयामास चिन्तानिमग्नः ॥४५॥

शिवाजी वहाँ जेल में तीन मास रहा। यह सोचता हुआ कि शत्रु के पंजे से कैसे छूटूं। लेकिन दैव योग से अन्त में चिन्ता में डूबे हुये शिवाजी न एक उपाय सोच ही लिया।

शिवो व्याजरूपेण रुग्णो बभूव
चिरं रोगशय्याश्रितश्चैव तस्थौ।
ययुर्वाऽऽययुर्द्रष्टुमन्यान्यवैद्याः
प्रसिद्धीकृतेयं च सर्वत्र वार्ता ॥४६॥

शिवाजी ने बीमारी का बहाना बनाया और बहुत दिन रोगशय्या पर ही पड़े रहे। अनेकों वैद्य देखने को आते जाते रहें। और यह बात सब जगह प्रसिद्ध हो गई।

प्रयोगाश्चिकित्सेतराश्चापि सर्वे
सुसम्पादिताश्छद्मरुग्णस्य मित्रैः।
अनेकानि मिष्टान्नभृत्-पेटकानि
प्रदानाय तैः प्रत्यहं प्रेषितानि ॥४७॥

बहाने-बाज रोगी के मित्रों ने इलाज के अतिरिक्त अन्य सब उपाय भी उसके चंगा करने के लिये किये। प्रतिदिन मिठाई की भरी टोकरियाँ बाँटने के लिये भिजवाई जाने लगीं।

अवेक्ष्यैकदा मित्रवर्गैः सुकालं
सपुत्रः शिवो गोपितः पेटिकायाम्।
फलान्नादिदातव्यसंभारसार्धं
बहिर्नीत आच्छादितः पुष्पपत्रैः ॥४८॥

मित्रों ने एक दिन अच्छा अवसर देखकर शिवाजी और उसके लड़कों को एक पिटारी में बाँटने योग्य फल, अन्न आदि के साथ फूल पत्तों से छिपा दिया और बाहर निकाल लाये।

महाराष्ट्र-मायावि-मायानिगूढ़ां
निशम्यात्मलोकास्यतश्चिन्त्यवार्ताम्।
प्रकोपाद् विषादे विषादात् प्रकोपे
न्यमज्जन्मुहुर्मूढ औरंगजेबः ॥४६॥

महाराष्ट्र के जादूगर की गुप्त माया की बात अपने नौकरों के मुख से सुनकर किंकर्त्तव्य विमूढ औरङ्गजेब क्रोध से खेद में और खेद से क्रोध में डूबता रहा। अर्थात् कभी उसे नौकरों पर क्रोध आता कभी शत्रु के भाग जाने पर दुख होता।

शिवोऽनेकवैषेष्वविख्यातमार्गै—
र्महाकण्टकाकीर्णयात्रां विधाय।
प्रमुष्णन् सहस्राक्षदिल्लीशसेनां
कथंचित् समायाद् गृहं दीर्घकाले ॥५०॥

शिवाजी अनेक भेस बदल कर अपरिचित मार्गों से बड़ी कठिन यात्रा को करके दिल्ली के बादशाह की हजारों आँखे रखने वाली सेना की आँखों में धूल डालते हुये किसी प्रकार घर पहुँच गये।

ससादैकदाऽन्तःपुरे राजमाता
शिवस्वस्तये शंकरं चिन्तयन्ती।
तदोक्ता विनम्रं "भवद्दर्शनाय,
बहिर्देवि तिष्ठन्ति केचिद् यतीन्द्राः" ॥५१॥

एक बार राजमाता जीजाबाई घर में बैठी हुई थी। और शिवाजी की क्षेम के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी। उसी समय नम्रता से नौकर ने कहा, देवी जी आपके दर्शन के लिये कुछ साधु बाहर खड़े हैं।

परिव्राजकेष्वागतेष्वेक आसीद्
य आगत्य पस्पर्श पादौ जनन्याः।
तयाऽदर्शि चाज्ञायि चोक्तं प्रहर्षाच्
"छिवो मे शिवो मे शिवो मे शिवो मे" ॥५२॥

उन साधुओं में से एक ऐसा था जिसने आकर माता के चरण छुये। माता ने देखा, आनन्द से चिल्ला पड़ी, "अरे यह तो मेरा शिवा है। अरे यह तो बेटा शिवा ही है"।

महाराष्ट्रसूर्य्योदयालोकरश्मि—
प्रबुद्धाः प्रहृष्टाः महाराष्ट्रलोकाः।
महोत्साहपूर्वं समारब्धवन्तो
ग्रहीतुं च राज्यं बलात् तुर्कपाणेः ॥५३॥

महाराष्ट्र के सूर्य्य के उदय के प्रकाश की किरणों से जग कर महाराष्ट्र लोग बड़े आनन्दित हुये। और उन्होंने उत्साह पूर्वक राज को बलात्कार तुर्कों से छुड़ाने का आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

शर्मिष्ठा शिवाऽनीकिनी शूरगर्भा
दयार्द्रा दयाशत्रुशत्रुर्बलिष्ठा।
शठान् भर्त्सयन्ती शुभान् पालयन्ती
व्यचारीदहो दिक्षु काषायकेतुः ॥५४॥

शिवाजी की शान्ति युक्त शूरों से भरी हुई बलवती दयाशील, दया के दुश्मनों की दुश्मन सेना दुष्टों को धमकाती और अच्छे पुरुषों का पालन करती हुई भगवा झंडे के साथ चारों ओर विचरने लगी।

अनेकानि दुर्गाणि बीजापुरस्य
तथाभूमिभागाँश्च दिल्लीश्वरस्य।
विजित्याल्पकाले हि जीजी-सुतोऽसौ,
नवीनस्य राज्यस्य राजा बभूव ॥५५॥

बीजापुर के अनेक दुर्ग तथा दिल्ली के बादशाह के कई गाँव जीतकर जीजाबाई के पुत्र शिवाजी नवीन राज्य के राजा हो गये।

जयेऽपश्यदौरङ्गजेबः शिवस्य
क्षयं स्वस्य राज्यस्य भूयो महान्तम्।
चतुर्थ्यां हिमांशोर्यथा वक्ररेखा
विनाशस्य संसूचिका दर्शकानाम् ॥५६॥

औरङ्गजेब ने शिवाजी की जय में अपने राज्य की बहुत हानि देखी। जैसे चतुर्थी के चन्द्रमा की टेढ़ी रेखा दर्शक लोगों के विनाश की सूचक होती है।

"ग्रहीतुं न सेनासु मे कोऽपि शक्तो
भटो दाक्षिणात्ये शिवग्रस्तदेशान्।"
इति स्वीयचित्ते स शंकां विधाय
स्वयं प्रस्थितस्तत्र दिल्लीनरेन्द्रः ॥५७॥

अपने मन में यह शंका करके कि मेरी सेना में कोई ऐसा बहादुर नहीं है जो शिवाजी द्वारा जीते हुये देशों को उस से छीन सके, बादशाह औरङ्गजेब स्वयं दक्षिण को चल दिया ।

असंख्यं चमूमायुधैरस्त्र शस्त्रै—
र्नरघ्नैर्नरग्रामविध्वंसकृद्भिः ।
सुसज्जां समादाय संकल्पदाढ्यं
विनाशाय चक्रे समूलं शिवस्य ॥५८॥

मनुष्यों को मारने और बस्तियों को नष्ट करने वाली अस्त्र-शस्त्रों से सजी हुई असंख्य सेना को लेकर शिवाजी के समूल नाश का दृढ़ संकल्प बादशाह ने कर लिया ।

न जानन् गुणान् पंकभूमेः करीन्द्रो
मदेन प्रमादेन पादान् दधाति ।
गुरुत्वेन देहस्य तन्मज्जितोऽसौ
ध्रुवं याति मृत्युं क्रमेण क्रमेण ॥५९॥

हाथी कीचड़ के गुणों को न जानकर मद और प्रमाद से उस पर पैर रख देता है । और अपने भारी शरीर के कारण उसी में फसकर शनैः शनैः निश्चय ही मर जाता है ।

तथैव प्रमादी स औरङ्गजेबो
गुरुत्वेन राज्यस्य चूर्णीकृतार्थः ।
गतो दक्षिणं मृत्युपाशे निबद्धो
न चैवाययौ जीवितो राजधानीम् ॥६०॥

इसी प्रकार प्रमादी औरङ्गजेब अपने राज्य के गुरुत्व के कारण मनोरथों को चूर्ण करके दक्षिण को गया और मृत्यु के पाश में फँसकर फिर जीता अपनी राजधानी को नहीं लौट सका।

निहन्तुं शुभां संस्कृतिं भारतीयां,
नृणां मुस्लिमानां सदाऽऽसीत् प्रयासः।
विशेषेण चौरङ्गजेबस्य नीत्या
विधानान्यभद्राणि संस्थापितानि ॥६१॥

भारत की शुभ संस्कृति को नष्ट करने की तो सभी मुसलमान लोगों की सदा कोशिश रही। लेकिन औरङ्गजेब की नीति में तो बहुत से बुरे विधान बन गये।

कराः क्लेशदा मानहानि प्रयुक्ता
विशेषेण संस्थापिता हिन्दुवृन्दे।
तथा सर्वतः शासने पक्षपातः
कृतो न्यायशून्यैरशून्यासनस्थैः ॥६२॥

क्लेश देने वाले और मानहानि करने वाले बहुत से कर विशेष कर हिन्दुओं पर लगाये गये और अन्यायी प्रमुख कर्मचारियों ने शासन में बड़ा पक्षपात किया।

प्रसिद्धेषु तीर्थेषु हिन्दूमतानां
मतान्धेन भग्नानि पूजागृहाणि।
प्रदेशेषु तेषां तथा मन्दिराणां
बृहन्मस्जिदान्येव निर्मापितानि ॥६३॥

हिन्दुओं के भिन्न २ सम्प्रदायों के प्रसिद्ध तीर्थों में मतान्ध औरङ्गजेब ने मन्दिर तोड़ डाले और उनके स्थान में बड़ी बड़ी मस्जिदें बनवाँई।

न सोढुं क्षमास्तान्यभद्राणि लोका
अभिद्रोहमाचक्रिरे दिक्षु दिक्षु।
शनैरार्यजातेश्च दासत्वपाशाः
स्वयंशत्रु पापैर्निकृत्ताः समग्राः ॥६४॥

लोग उन अत्याचारों को सह न सके। चारों ओर गदर मचा दिया। शनैः शनैः आर्य्यजाति की दासता की सब बेड़ियाँ शत्रुओं के निजकिये हुये पापों ने ही स्वयं काटदो। तात्पर्य यह है कि शत्रु अपने पापों के कारण ही नष्ट हो गया।

इत्यार्य्योदये शिवोत्थानवर्णनं नाम सप्तमसर्गः।

अथाष्टमः सर्गः

दशरथसुतसूनोर्जानकीनन्दनस्य
दिनकरकुलकान्तिव्यूहरश्मेर्लवस्य ।
चिरपरिचितवंशस्यास्ति 'वेदी'ति शाखा
लवपुरनिकटस्थे पुण्यपञ्चाम्बुदेशे ॥१॥

दशरथ के पुत्र राम के बेटे, जानकी के नन्दन, सूर्य कुल के प्रकाश पुंज की किरण के एक टुकड़े अर्थात् लव के चिर प्रसिद्ध वंश की 'बेदी' नाम की एक शाखा लाहौर के निकट पंजाब में रहती है ।

मुसलिम-कुल-लोदी-भूभृतां राज्यकाले
समजनि 'तलवन्या' धर्मपात्रोः सुपित्रोः ।
परमकुशल "कालू-तृप्तयोः" पुण्य गेहे
व्रतधरशिशुरेको 'नानकाख्यो' महात्मा ॥२॥

जब दिल्ली में मुसलमान लोदी बंश का राज था उस समय 'नलवण्डी' गांव में धर्मपातृ अर्थात् धर्म के पालक अच्छे मा बाप, परम कुशल 'कालू' नामक पिता और 'तृप्ता' नामक माता के पुण्य घर में एक व्रत पालक बेटा नानक महात्मा उत्पन्न हुये ।

श्रुतिविहित मतानां वीक्ष्य हानं नितान्तं
मुसलिममतवृद्धिं घातिनीं संस्कृतेश्च ।

उभयदलहितानां मध्यमन्विष्यमार्ग—
मयतत गुरुवर्यो दातुमाचारशिक्षाम् ।।३।।

वैदिक धर्म की नितान्त हानि और संस्कृति की घातक मुसलमानों की वृद्धि देखकर दोनों दलों (हिन्दू और मुसलमानों) के हितों का बीच का मार्ग खोजकर गुरु नानक ने आचार-शिक्षा देने का यत्न किया ।

नहि किमपि नवीनं नानकोऽदान्नरेभ्यः
ऋषिभिरखिलतत्त्वं पूर्वजैः प्रोक्तमेव ।
नवमतजनितोग्रभ्रान्तिबन्धाद् विमोक्तुं
भवकलुषितलाकान् नानकस्य प्रयासः ।।४।।

नानक जी ने लोगों को कोई नई बात नहीं दी। पुराने ऋषि सब तत्व पहले से ही कह गये हैं। नये मतों से उत्पन्न हुई उग्रभान्ति के वन्धन से संसार के बिगड़े लोगों को छुड़ाने का उनका प्रयत्न था ।

शुकमिव भगवन्तं चार्थशून्यं रटन्तं
कतिपयजडदेवानन्धभक्त्याऽर्चयन्तम् ।
जनगणमवलोक्यैकेशपूजांविहाय
गुरुवरऋजुमार्गं दर्शयामास तस्मै ।।५।।

गुरुवर ने लोगों को देखा कि तोते के समान भगवान का का नाम रटते हैं। और अन्धविश्वास से कुछ जड़ देवताओं को पूजते हैं। एक ईश्वर की पूजा छोड़ दी है। अतः गुरु ने लोगों को सीधा मार्ग दिखाया ।

जगदधिपतिरेकः केवलश्चाद्वितीयो
नहि धरति शरीरं कस्यचित् प्राणिनोऽसौ ।
अमरमजमकायं पावनं चित्स्वरूपं
मनसि मनुज एनं पूर्णभक्त्या निदध्यात् ॥६॥

ईश्वर एक अद्वितीय, अमर, अजर, अकाम, पवित्र, चित्स्वरूप है वह किसी प्राणी का शरीर धारण नहीं करता (अवतार नहीं लेता), मनुष्य को चाहिये कि पूर्ण भक्ति से उसका मन में ध्यान करे।

नहि जनयतु भेदं मानवो मानवेषु
प्रभुरवति मनुष्यान् भेदभावं विहाय ।
न भवति हि महत्ता लिङ्गतो जन्मनो वा
व्रजति स हि गुरुत्वं यो गुणी कर्मनिष्ठः ॥७॥

मनुष्य मनुष्यों में भेद न करे। ईश्वर सब की बिना भेद भाव के रक्षा करता है। लिङ्ग या जन्म से कोई बड़ा नहीं होता। जो गुणवान या कर्मनिष्ठ है वही बड़ा है।

मुसलिमकुलजातो वाऽपि हिन्दुस्तथान्यो
भवतु रजक एव ब्राह्मणः क्षत्रियो वा ।
वसति हृदयमध्ये प्राणिनां प्रेम यस्य
भवति नरवरिष्ठो ब्रह्मणः प्रेमपात्रम् ॥८॥

चाहे मुसलमान के घर में पैदा हो चाहे हिन्दू के घर में। चाहे धोबी हो चाहे ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय। जिसके दिल में प्राणियों के लिये प्रेम है वही श्रेष्ठ पुरुष ईश्वर का प्यारा है।

रटति यदि कुरानं मस्जिदे सुस्वरेण
पठति यदि पुराणं पावने मन्दिरे वा ।
ज्वलति च हृदि धग् धग् यस्य विद्वेषवह्नि
र्भवतु किमिव पूर्णास्तस्य मोक्षाऽभिलाषः ॥९॥

चाहे स्वरसहित मसजिद में कुरान पढ़े, चाहे पवित्र मन्दिर में पुराण का पाठ करे जिसके मन में द्वेष की अग्नि धग् धग् जलती है उसकी मोक्ष को इच्छा कैसे पूर्ण होगी ?

मनुजतनुधरा ये पापकर्माचरन्ति
मरणमनु हतार्था निम्नयोनीर्लभन्ते ।
य उ विमलमकालं पुण्यशीला भजन्ते
परमपदमनन्तं तेऽन्ततः प्राप्नुवन्ति ॥१०॥

जो मनुष्य पाप कर्म करते हैं वे मरने के उपरान्त नीच योनियाँ पाते हैं । जो पुण्यात्मा शुद्ध "अकाल पुरुष" की आराधना करते हैं वे अन्त में अनन्त परम पद के भागी होते हैं ।

इति गुरुवरशिक्षा विश्वतो लब्धकीर्ति-
र्जलघटमिव तैलं सर्वदेशं व्यतानीत् ।
अलभत सुखशान्तिं दीक्षया नानकस्य
मुसलिम उत हिन्दुर्वाऽभवत् कश्चिदन्यः ॥११॥

गुरुनानक की यह शिक्षा जल घट में तेल के समान देश भर में फैल गई । नानक जी की दीक्षा से सब शान्ति और सुख पाने लगे, चाहे मुसलमान हो या हिन्दू या कोई और ।

न स मुसलिमधर्मं द्वेषदृष्ट्या ह्यपश्यत्
श्रुतिनिगदितभावान् श्रद्धया दृष्टवांश्च ।

गवि समुचितभक्ति जीवहिंसानिषेधो
दुरितमिति च बुद्धिर्मादके धूम्रपाने ॥१२॥

नानक जी मुसलमानी धर्म से द्वेष नहीं करते थे। वैदिक शिक्षा पर भी श्रद्धा थी। गौ के भक्त थे। जीवहिंसा का निषेध करते थे। नशे की चीजों और तम्वाकू को बुरा समझते थे।

प्रकृतिसरल आसीन् नानकःशुभ्रचेता
जटिल-कुटिल-विद्यमान-मात्सर्य-मुक्तः।
विमलमृदुशान्तःस्वात्मभाषा सुदीप्तः
सरलहृदयशिष्यान् वाममार्गादरक्षीत् ॥१३॥

शुद्ध चित्तवाले नानक जी सरल प्रकृति के थे। उनमें जटिल कुटिल विद्या का अभिमान या मत्सरता न थी। शुद्ध, नरम, शान्त स्वभाव, भीतरी ज्योति से प्रकाशित। वे सरल हृदय शिष्यों को उलटे मार्ग से बचाते थे।

भवति जनगिरायां 'सिक्ख' शब्दस्तु "शिष्यात्"
प्रथितमिति मतं तत् सिक्खनाम्नाबभूव।
प्रथमतमगुरुस्तन्नानकोऽभून्महात्मा
तदनु तदनुवृत्तिं चक्रिरे ये नवासन्* ॥१४॥

---

* अधष्टिप्पणीः—
प्रथमं नानकं विद्याद् द्वितीयं चाङ्गदं शुभम्।
अमराख्यं तृतीयं च रामदासं चतुर्थकम् ॥१॥
पंचमश्चार्जुनः श्रेष्ठो हरिगोविन्द उत्तरः।
सप्तमो हरिरायश्च हरिकृष्णोऽष्टमोऽभवत् ॥२॥

लोक भाषा का 'सिक्ख' शब्द संस्कृत के 'शिक्षा' शब्द का अपभ्रंश है। इसलिये इस मत का नाम सिक्ख मत हो गया। पहले गुरु नानक महात्मा हुये। इनके पीछे एक दूसरे के पश्चात् नौ और हुये।

सिखगुरुदशके यो त्वादिमौ द्वौ त्रयोवा
हरिगुणभजनेऽन्मुख्यतस्तत् प्रवृत्तिः।
सहज-सुखद-मार्गैर्लोकसेवांविधाय
समतनिषत देशे सिक्खसामान्यधर्मम् ॥१५॥

सिखों के दस गुरुओं में जो पहले दो या तीन थे उनकी विशेष प्रवृत्ति ईश्वर भजन में थी। सहज सुखद मार्गों से लोक सेवा को करके वह देश में सिक्खों के सामान्य धर्म का प्रचार करते थे।

घुण इव दृढ़दारौ रोगकीटःशरीरे
सिखमततनुमध्ये प्राविशद् द्वेषभावः।
मृतगुरुपदलिप्सा-द्वन्द्व-जन्यात्मदोषै—
रविरलमवरुद्धा सिक्खजातेश्च वृद्धिः ॥१६॥

जैसे मजबूत लकड़ी में घुन लग जाता है या शरीर में रोग के कीटाणु लग जाते हैं उसी प्रकार सिक्खमत के शरीर में द्वेष

तेगबहादुरो वीरो नवमः कथ्यते गुरुः।
तस्य सूनुस्तु गोविन्दो दशमश्चान्तिमस्तथा ॥३॥

सिक्खों के दस गुरु हुये गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदेव, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु हरगोविन्द, गुरु हरिराय, गुरु हरिकृष्ण, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह।

के भाव प्रवेश कर गये। गुरु के मरने पर कौन गुरु बने इसकी लालसा से दो दल बन्दी हुई उससे उत्पन्न दोषों ने निरन्तर सिक्खों की वृद्धि को रोका।

प्रथमगुरुभिरादौ घोषिता मृत्युकाले
स्वतनयमतिरिच्य स्वोत्तराःकेऽपि शिष्याः।
नवनियतगुरोश्च त्यक्तसूनोश्च मध्ये
कलह-कटुतयासीऽऽच्छान्तिभङ्गप्रसङ्गः ॥१७॥

आरम्भ में पहले गुरुओं ने अपनी मृत्यु के समय अपना उत्तराधिकारी अपने लड़के को न चुनकर किसी शिष्य को चुन दिया। इस नये गुरु में और उस पुत्र में जिसको गुरु नहीं चुना गया बहुत झगड़े होते रहे।

गुरुरमरसुशिष्यो रामदासस्तुरीयो,
गुरुमकृत कनिष्ठं ज्येष्ठमुत्सृज्य पुत्रम्।
तदुपरि पृथिवीसिंहार्जुनौ भ्रातरौ द्वौ
रिपुरिव ववृताते शत्रुणा भाग्यहीनौ ॥१८॥

चौथे गुरु अमरदेव के शिष्य चौथे गुरु रामदास ने अपने बड़े बेटे की उपेक्षा करके छोटे पुत्र अर्जुन देव को गद्दी दे दी। इस पर बड़े भाई पृथ्वी सिंह और छोटे भाई गुरु अर्जुन देव में दुर्भाग्य से शत्रुओं के समान लड़ाई होती रही।

मुगलनृपजहाँगीरेण दृष्टः समन्तात्
सिखदलदमनार्थं शोभनः कार्यकालः।
गुरु-पितृ-सुत-पृथ्वी-प्रार्थितेनैव तेन
झटिति गुरुरबन्धिच्छद्मना शुद्धकीर्तिः ॥१९॥

मुगल बादशाह जहाँगीर ने देखा कि सिक्खों के दमन का यह अच्छा अवसर है। गुरु अर्जुन के पिता रामदास, उनके बड़े लड़के पृथिवी सिंह, उनकी प्रार्थना पर बादशाह ने झट से शुद्ध चरित्र अर्जुन देव को छल से कैद कर लिया।

अकबरनृप आसीत् सर्वधर्मानुरागी,
मृदुकमलमृणालैर्हस्तिनस्तेन बद्धाः।
मत-मधु-मद-मत्तास्तस्य पुत्राश्च पौत्रा
अवि-सम-मृदुसिक्खान् चक्रिरे सिंहतुल्यान् ॥२०॥

बादशाह अकबर सब धर्मों का अनुरागी था। उसने नरम कमल की डंडी से हाथी बाँध डाले। परन्तु मत के नशे से मत वाले उसके पुत्र और पोतों ने भेड़ के समान कोमल सिक्खों को सिंह बना दिया।

अशुभदिवस आसीदर्जुनो यन्निबद्धो
मुसलिम-सिख-वैरस्यादिमूलं स एव।
नहि मुमुचतुरेते द्वे दले तन्मुहूर्तात्
क्षणमपि कटुभावान् द्वेष-विद्वेष-पूर्णान् ॥२१॥

वह बड़ा अशुभ दिन था जब अर्जुन देव कैद हुये। मुसलमानों और सिक्खों के वैर का आदिमूल वही दिन है। उस दिन से आज तक एक क्षण भी इन दोनों दलों ने दोष के भावों को नहीं त्यागा।

यमपुरि यमहस्तात्प्राणिनःपापबिद्धा
अघफलसमदुःखं न्याययुक्तं भजन्ते।

मुगलनृपतिकोपाद् यातना-यन्त्र-बद्धो
गुरुरतुलितकष्टं शुभ्रचित्तोऽपि सेहे ॥२२॥

नरक के पापी प्राणियों को यमराज के हाथ से न्याय पूर्वक पाप के अनुसार दुःख मिलता है। परन्तु मुगल बादशाह के कोप से कैद मे पड़े गुरु ने साफ दिल होते हुये भी बड़े कष्ट उठाये।

तपति नभसि सूर्य्यो ज्येष्ठमासे प्रचण्डो
वमति किल कृशानुं मेदिनी तप्तगर्भा।
वहति कुपितवायुर्विश्वतो वह्निवाही
धमति कुलिशमैन्द्रं वज्रकारी निदाघः ॥२३॥

गुरुमरिदललोका ईदृशे तप्तकाले
दधति पचन-दग्धे वस्त्रहीनं कटाहे।
क्षिपति जनसमूहश्चोष्णरेणुं शरीरे
विहसति खल-वर्गो वीक्ष्य तं पीड्यमानम् ॥२४॥

ज्येष्ठ मास का तेज सूर्य्य तप रहा है। नीचे से गर्म जमीन से आग निकल रही है। आग बरसाने वाली हवा चारों ओर से चल रही है। वज्र का बनाने वाला ग्रीष्म ऋतु इन्द्र के वज्र को बनाने के लिये भट्टी धौंक रहा है। ऐसी गर्मी में शत्रुओं का दल गुरु अर्जुनदेव को नंगा करके आग पर दहकते हुये कढ़ाव में डाल देता है। और लोग उस पर गर्म बालु फेंकते हैं। गुरु की तकलीफ को देखकर मूर्ख लोग मखौल करते हैं।

चिरमिति धृतिशीलोऽसह्यपीडाममर्षीन्
नतु मुसलिमधर्मं वीर्यवान् स्वीचकार ।
अपि लवपुरदुर्गाद् भौतिकाच्चैव देहात्
सिख-गुरुवर-देवं मोचयामास देवः ॥२५॥

इस प्रकार बहुत दिनों तक उस धैर्यवान् गुरु ने असह्य पीड़ा सही। परन्तु उस वीर ने मुसलमान धर्म स्वीकार न किया। यहाँ तक कि एक दिन ईश्वर ने उसे लाहौर के जेल और भौतिक शरीर दोनों से छुड़ा दिया।

क्व च कथमुत किं कः कारयामास केन
क्व च कथमुत किं किं वा कृतं केन केन ।
क्वच कथमुत मीतश्चार्जुनः पूज्यपादो
गुरुवधविधिवार्त्ता वर्णनं कष्टसाध्यम् ॥२६॥

किसने किससे कब और कैसे क्या कराया ? किस किसने कब कैसे कैसे क्या क्या किया। अर्जुन देव जी कब और कैसे मरे ? (मीतः प्रमीतः मृतः) गुरु के मारने की विधि की कथा का वर्णन कठिन है।

भगवति गुरुपातेऽमुत्रलोके प्रयाते
सिखजनसमुदायो रोषपूर्णो बभूव ।
तदनु गुरुपदव्यामागता ये प्रवीरा
मुगलबलविनाशे दत्तवन्तो मनांसि ॥२७॥

गुरु भगवान के मरने पर सिक्खों में बड़ा क्रोध आया। उस के पश्चात् जो लोग गुरु के आसन पर बैठे वे मुगलों के बल के नाश की बात ही सोचते रहे।

हरिगुणजपमालां सिक्खलोका विहाय
जगृहुररिकपालोच्छेतृतीक्ष्णंकृपाणम् ।
य इह सुमृदुवाक्यैश्चादिशन्-जन सभासु
प्रखरविदथमध्ये क्षात्रयज्ञं वितेनुः ॥२८॥

सिक्ख लोगों ने हरि जपने की माला तोड़ दी । शत्रु के सिर को काटने वाली तेज तलवार लेली । जो लोग सभाओं में लोगों को कोमल उपदेश दिया करते थे उन्होंने घोर युद्धों में क्षात्र यज्ञ रच डाला ।

पितुरवमतिशोधे केन्द्रितक्षात्रवृत्तिः
प्रकुपितहरिगोविन्दाख्यषष्ठो गुरुः सः ।
अकृत सकल सिक्खान् सैनिकान् शस्त्रयुक्तान्
अथ च गुरुनिवासान् सैन्यशिक्षागृहाणि ॥२९॥

छठे गुरु गोविन्द को इतना क्रोध था कि उन्होंने अपनी समस्त क्षात्र शक्ति को बाप के अपमान का बदला लेने में केन्द्रित कर दिया । सब सिक्खों को शस्त्र दे दिये । और सब गुरुद्वारे मिलिटरी कैम्प बन गये ।

चकितमुगलभूपः पश्चिमायां दिशायां
सघनगगनमध्ये वीक्ष्य विद्रोहधूलिम् ।
सपदि शमनवृत्त्योवाच पंचाम्बुलोकान्
कुरुत कुरुत यूयं मेदिनीं सिक्खशून्याम् ॥३०॥

मुगल बादशाह पश्चिम की ओर से आकाश में गदर की धूली को बहुत घने रूप से देखकर चकित रह गया और उसको

तुरन्त शान्त करने के लिये पंजाब के लोगों से कहा कि तुम लोग पृथ्वी को सिक्खों से बिलकुल खाली कर दो। (इनको मार डालो)

मुसलिमनृपलक्ष्यं सिक्खजातेर्विनाशो
मुगलदलविनाशः सिक्खजातेश्च लक्ष्यम् ।
उभयदलसमक्षे केवलं लक्ष्यमेकं
परदलहितहान सर्वदा सर्वथा च ॥३१॥

मुसलमान बादशाह का लक्ष्य था सिक्खजाति का नाश, सिक्खजातिका लक्ष्य था मुगलों का नाश। दोनों दलों के समक्ष एक ही लक्ष्य था अर्थात् सदा सब प्रकार से शत्रु की हानि हो।

गुरुवरहरिगोविन्दो दधौ खड्गिनौ द्वौ
सिखगुरुपद-केतुस्त्वेतयोरेक एव ।
अपर इव नृपत्वं दर्शयामास लोके
गुरुरथ नृप आसीन् मिश्रितोऽसौ सदैव ॥३२॥

हरगोविन्द गुरु दो तलवार बाँधते थे, इन में से एक सिक्ख गुरु के पद का सूचक थी। दूसरी संसार की बादशाहत बताती थी। उस गुरु में निरन्तर दो चीजें मिली रहीं। वह गुरु भी था और राजा भी। वह कहा करते थे कि एक तलवार 'पीरी' की है और दूसरी 'मीरी' की।

वसत इह न सिंहावेकदेशे यतस्तत्
सिखगुरुनरपत्वं नैव सेहे नरेन्द्रः ।
पुनरपि हरिगोविन्दो निबद्धो नृपेण
सिखबलमनुभूय त्वन्ततोऽसौ विमुक्तः ॥३३॥

एक जंगल में दो शेर नहीं रहते, इसलिये बादशाह को यह सहन न था कि सिक्ख गुरु राज भी करे। बादशाह ने फिर हरगोविन्द को कैद कर लिया। परन्तु सिक्खों का जोर देखकर अन्त में छोड़ दिया।

कतिपयदिवसेषु त्वेतयोः शान्तिरासीन्
निजनिजबलवृद्धौ तस्थतुस्तत्परौ तौ।
शहजँहनुपकाले तूत्थितो वैरवह्नि-
र्युधि मुसलिम सेनाः सिक्खवीरैःपरास्ताः ॥३४॥

कुछ दिनों तो इन दोनों में शान्ति रही। दोनों अपना बल बढ़ाने में लगे रहे। शाहजहाँ बादशाह के समय में वैर की आग भड़क उठी। सिक्खवीरों ने मुसलमान फौजों को लड़ाई में हरा दिये।

सिख-विजय-हविष्यं भूप रोषाग्निमध्ये
पतितमकृत दीप्तं विश्वतो नारकाग्निम्।
श्रम-कृषि-धन-धान्य-क्षेम-शान्तिप्रयोगाः
कलहदहनदाहे ते च भस्मी-बभूवुः ॥३५॥

सिक्खों की विजय का घी बादशाह के क्रोध की अग्नि में जो पड़ा तो नरक की आग दहकने लगी। कारबार, खेती, धन, धान्य, क्षेमकुशल सब लड़ाई की आग में जलकर नष्ट हो गये।

नहि किमपि बिशिष्टं सप्तमे वाष्टमे वा
कथमपि समयं तौ यापयामासतुर्द्वौ।
कटु च मृदु च कृत्वा कर्म किंचित् कथंचित्
सिखमत-हितमावे वै गुरुभ्यामुभाभ्याम् ॥३६॥

सातवें और आठवें गुरु में कोई विशेष वात न थी, उन्होंने किसी प्रकार समय विताया, कुछ थोड़ा सा कटु या नरम काम करके उन दोनों गुरुओं ने थोड़ा सा सिखमत का हित साधा।

(आवे अवतेलिटि कर्मणि)

गुरुवरहरिगोविन्दस्य "तेगे" तिसूनु-
र्नवमगुरुररक्षीत् शीर्षदानेन धर्मम्।
स्मृतिभवनमपूर्वं सीसगंजाभिधेयं
नभसि लसति दिल्यां "चांदनी चौक" मध्ये ॥३७॥

गुरु गोविन्द के पुत्र 'तेगवहादुर' ने जो नवें गुरु थे अपना सिर देकर धर्म की रक्षा की, उनकी स्मृति का अपूर्व भवन सीसगंज गुरुद्वारा दिल्ली के चांदनी चौक में अब भी खड़ा है।

हिमवति गिरिराजे सुस्थितो वायुकोणे
मुकुटमिव पृथिव्याः सज्जितं कोटिरत्नैः।
त्रिभुवनसुषमाणां निर्मितः सारसारै-
रलति भरतभूमिं भव्यकाश्मीरदेशः ॥३८॥

हिमालय पर्वत पर वायव्य (उत्तर-पश्चिम) कोने में करोड़ों रत्नों से जड़ा पृथिवी के मुकुट के समान तीनों लोकों के सौंदर्य के सार से वना हुआ सुन्दर काश्मीर देश भारत भूमि को अलंकृत कर रहा है।

नयन-सुखद-दृश्या लक्षिता लक्षवर्ण—
मृदुसुरभितपुष्पा घ्राणदेवाभिरामा।
श्रुतिरसमधुमत्ता कूजिता पक्षिवृन्दै—
र्हिमयुतगिरिमाला शोभतेऽसौ विशाला ॥३९॥

आँखों को सुख देने वाले दृश्यों वाली, लाखों रंगों से लक्षित, कोमल सुगन्ध के फूलों वाली, नासिका इन्द्रिय को सुख देने वाली (देव=इन्द्रिय) कान के रस के मधु से भरी हुई, पक्षियों गानों से कूजित, यह बर्फ से ढकी हुई पहाड़ों की लड़ी शोभायमान है।

निवसति चिरकालादत्र सैवार्यजाति:—
रलभत जगदादौ सभ्यतां यत्सकाशात्।
बत विधिगतिचैत्र्यं सा प्रमादादिदोषैः
श्रम-बल-मति-हानैः शत्रुपाशे पपात ॥४०॥

यहाँ बहुत दिनों से वही आर्य जाति रहती है। जिससे आदि काल में जगत ने सभ्यता सीखी थी। तकदीर की गति की कैसी विचित्रता है कि प्रमाद आदि दोषों के कारण वह श्रम, बल, बुद्धि को खोकर शत्रु के पंजे में फँस गई।

मुसलिमनृपतीनां कूटनीति-प्रभावान्
मुहमद-मत-मायादत्र तीव्राच्च वेगात्।
अकबर-युग-तुल्या पण्डितानामविद्या
रिपुरिव परधर्मे प्राक्षिपत् स्वात्म-लोकान् ॥४१॥

मुसलमान बादशाहों की कूटि नीति के प्रभाव से यहाँ मुसलमान धर्म वेग से फैला। जैसे अकबर के समय में पण्डितों ने अविद्या दिखाई ऐसे ही यहाँ भी उस अविद्या के कारण अपने ही आदमियों को पराये धर्म में शत्रु के समान फेंक दिया गया।

अकुरुत खलु राज्यं रम्यकाश्मीरदेशे
नरपतिसहदेवः कोमलो मन्दबुद्धिः।

इतर विषयवासी "रत्नजू" नामधेयः
सचिवपदमवापद् भूपवयस्य तस्य ॥४२॥

रम्य काश्मीर देश में एक निर्बल, मन्द बुद्धि 'सहदेव राजा राज' करता शा। किसी दूसरे देश का 'रत्नजू' नामक एक आदमी उस राजा का मन्त्री बन गया।

नय-कुशल-सुधीमान् संस्कृति प्रेमपूर्णः,
परमविनयपूर्वं वेददीक्षां समैषीत्।
नय-रहित-विमूढाधर्म-विज्ञब्रुवाणा
अकुषत न निवेशं तस्य हिन्दूसमाजे ॥४३॥

नीति कुशल, बुद्धिमान् संस्कृति के प्रेमी मन्त्री ने बहुत विनय से वैदिक धर्म में आने की इच्छा की। परन्तु नीति शून्य मूर्ख, धर्मज्ञ कहलाने वाले लोगों ने उसको हिन्दू समाज में नहीं लिया।

इति पिहितमवेक्ष्य प्रेष्ठधर्मस्य मार्गं
धननिधिपभुजङ्ग राकृतो विप्रवर्गैः।
अवमतिपरितप्तो "रत्नजू" धर्मकाङ्क्षी
मुसलिममतदाक्षान्ततः स्वीचकार ॥४४॥

आकृति में ब्राह्मण परन्तु वस्तुतः धन के रक्षक सर्पों से प्यारे धर्म का मार्ग बन्द देखकर अपमान से खिजे हुये और धर्म के इच्छुक 'रत्नजू' ने अन्त को मुसलमान मत स्वीकार कर लिया।

सुभगसचिववर्यं स्वात्मवर्गे निवेश्य
सकल मुहमदीया मेनिरे सौख्यलाभम्।

मुसलिममत वृद्धेरादिमूलं तदासीत्
क्षयमतिशयमाप्ता हिन्दवस्तत्रसर्वे ॥४५॥

ऐसे योग्य मन्त्री को अपने मण्डल में प्राप्त करके सब मुसलमान बड़े खुश हुये। मुसलमान धर्म की वृद्धि का वही आदि मूल था। वहाँ के हिन्दू लोगों का क्षय होने लगा।

कथमपि सहदेवःप्रच्युतो राज्यपीठान्।
नव मुसलिममन्त्री चाप्तवान् भूपतित्वम्।
धरति कमपि धर्मं नूतनं यो मनुष्यो
भवति खलु विशेषस्तत्र तत्पक्षपातः ॥४६॥

किसी प्रकार सहदेव गद्दी से उतार दिया गया, नया मुसलमान मन्त्री राजा हो गया। जो कोई किसी नये धर्म को ग्रहण करता है उसका उस पर विशेष पक्षपात होता है।

अनुदिनमपठत् सःश्रद्धया कृष्णगीता—
मलभत तत एवं तात्त्विकीमात्मशान्तिम्।
नयनपथि समायादेकदा तस्य राज्ञो
विषकणमिव गीतादुग्धकुम्भस्थ वाक्यम् ॥४७॥

वह प्रतिदिन श्रद्धा से गीता पढ़ा करता था। और उसको उससे वास्तविक शान्ति मिला करती थी, एक दिन उस राजा की दृष्टि गीता के दूध रूपी घड़े के एक विष के समान वाक्य पर पड़ी।

निधनमपि नराणां श्रेय इत्यात्मधर्मे,
भवति हि परधर्मो भीतिदो मानवेभ्यः।

निगदित इति राजा श्लेषतत्त्वाज्ञविप्रैः
परमतमवमेने तस्य क्षत्रुश्च जातः ॥४८॥

वह वाक्य यह था कि अपने धर्म में मौत भी अच्छी। पराया धर्म मनुष्यों को भयावह होता है। धर्म शब्द के श्लेषात्मक तत्व को न जानने वाले ब्राह्मणों ने जब राजा को यह अर्थ बताये तो राजा हिन्दू-धर्म का अपमान करने लगा और उसका शत्रु हो गया।

मुसलिममतपक्षे चान्यधर्मस्य नाशे
कटिपरिकरबद्धो 'रत्नजू' सम्बभूव।
अधिपतनय एवं शाहमीराभिधेयः
कटुतरपरिणामे पीडयामास हिन्दून् ॥४९॥

मुसलमान मत के पक्ष में और हिन्दूधर्म के नाश में रत्नजू तत्पर हो गया। और उस राजा के लड़के शाहमीर ने तो हिन्दुओं को और भी कठोर पीड़ायें देना आरम्भ किया।

अगणितजनसंख्या नीतितो भीतितो वा
मुसलिममतवेशात् प्राणरक्षामकार्षीत्।
अगणितजनसंख्या धर्मरक्षां विधातुं
नृपति-कुनय-वह्नौ जीवनं संजुहाव ॥५०॥

बहुत सों ने नीति या भय से मुसलमान बन कर जान बचाई, बहुतों ने धर्म की रक्षा के हेतु अपने जीवन को बादशाह की बुरी नीति की अग्नि में स्वाहा कर दिया।

कतिपयकुलदीपास्त्यक्तवन्तः स्वगेहं
विशद सुखददेशान् कासयामासुरन्यान्।

कतिपयदृढलोकाः सेहिरेऽसह्यकष्टं
तदनु जलधिमध्ये मज्जिता राजपुंभिः ॥५१॥

कुछ कुल के दीपक अपने घर को छोड़कर अन्य अच्छे देशों को प्रकाशित करने चले गये। कुछ दृढ़लोगों ने असह्य कष्ट सहे, इसके पीछे उनको राजपुरुषों ने झेलम नदी में डुबो दिया।

मुसलिमजनताया भूमिपौरङ्गकाले
मत-मद कटुचक्रं भीष्मरूपं दधार ॥
अपचितजनसंख्या हिन्दवः पीड्यमानाः
सिखगुरुमुपतस्थुश्चिन्तितास्तेगवीरम् ॥५२॥

औरङ्गजेब बादशाह के समय में मुसलमान जनता का मजहवी जनून और भी भीषण हो गया। घटती हुई संख्या वाले पीड़ित हिन्दू चिन्तित होकर गुरु तेगवहादुर के पास आये।

अथ निगदितमित्थं त्यागवीरेण तेन
प्रियतम बलिदानं हीष्यते कार्य्यसिद्ध्यै ।
गुरुवर-शिशुरेवं स्माह गोविन्दसिंहः
प्रियतर इह युष्मत् कथ्यतां कोऽस्ति तात ॥५३॥

उस त्याग वीर गुरु ने कहा "कार्य्य तव सिद्ध होगा जव किसी सब से प्यारे की वलि दी जाय"। गुरु का पुत्र गोविन्दसिंह बोल उठा, "पिता जी, बताइये, आपसे प्यारा कौन होगा' ?

अवितुमरिगणानाँ मर्मभेदिप्रहारा—
दयतत गुरुतेगः प्राणपण्येन जातिम् ।
शिरसि निधननृत्यं वै ध्रुवं वीक्ष्य वीरो
न तु मनसि चकम्पे नैव भूपादभैषीत् ॥५४॥

शत्रुओं के मर्म भेदी प्रहारों से जाति को बचाने के लिये गुरु तेगबहादुर ने प्राणपन से यत्न किया, वीर ने निश्चय देखा कि सिर पर मौत नाच रही है। लेकिन न तो मन में कांपा और न बादशाह से डरा।

मृगपतिरिभयूथं वीक्ष्य रोषं बिभर्त्ति
नकुलकुलजवीरः सर्पराजि तथैव।
पर-मत-जन-वृन्दान् पीडयन्तो ह्यदोषान्
सिखगुरुरवलोक्य क्रोधमूर्त्तिर्बभूव ॥५५॥

शेर हाथियों के झुण्ड को देखकर रोष करता है। न्योला साँपों की पंक्ति को देखकर उसी प्रकार व्यवहार करता है। पराये धर्म के निर्दोष लोगों को सताने वालों को देखकर सिख गुरु क्रोध से भर गये।

"मुसलिममतमङ्गीकृत्य यद्रक्षितस्त्व—
मितिनृपतिरवादीत् क्रूर औरङ्गजेबः।
यदि मम वचनं त्वं हेलसे लेशमात्रं
वधमनु तव मांसं ह्यत्स्यते काकगृध्रैः" ॥५६॥

क्रूर बादशाह औरङ्गजेब ने कहा, मुसलमान हो जाओ। तभी तुम्हारी जान बच सकती है। अगर तुमने मेरे हुक्म की लेश मात्र भी अवहेलना की तो तुम्हारा बध होगा और तुम्हारी लाश कव्वे और गिद्ध खायेंगे।

"विरम विरमं मूढ़ त्वं न जानासि तत्त्वं"
गुरुवर इति चाख्यद् रोषपूर्णस्वरेण।

"अमरतनुरसि त्वं किं वृथा भाषसे भो
य उ जगति समायाद् गंस्यते तेन नूनम्" ॥५७॥

गुरुवर क्रोधपूर्ण स्वर में बोले, "मूढ़, ठहर, ठहर, तू तत्व को क्या जाने ? क्या तू अमर शरीर लेकर आया है जो ऐसा बोलता है। जो संसार में आया वह तो अवश्य ही जायगा।

"यदि मरणमवश्यं किं बिभीयात् सुबुद्धि-
रमरमजरतत्त्वं कोऽपि हन्तुं न शक्तः ।
यदि मम शवमद्यात् कीटको वाऽपि काको
मम किमपि न हानं रक्षिते धर्मतत्त्वे" ॥५८॥

यदि मरना अवश्य है तो बुद्धिमान् क्यों डरे। अजर अमर तत्व को तो कोई मार नहीं सकता। मेरी लाश को कीड़े खायँ या कव्वे। धर्म तत्व की रक्षा होने पर मेरी क्या हानि ?

यदि मम वध इष्टः पूर्यतां क्षिप्रमिच्छा
क्षणमपि नहि दास्यं सह्यमस्ति त्वदीयम् ।
अघ-घट परिपूर्त्तिः साधनं वंशनष्टे—
रिदमपि शुभकार्यं किं न साध्यं त्वयैव" ॥५९॥

अगर मुझे मारना चाहता है तो इस इच्छा को शीघ्र पूरी करले। तेरी दासता को तो मैं एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता। पाप के घड़े की पूर्ति वंश को नाश कर देती है। यह शुभ कार्य भी तूही क्यों नहीं पूरा कर लेता।

परुषवचनमेतच्छ्रूयते तेन राज्ञा
नयन युगलमध्ये वर्धते कोपवह्निः ।

भवति नभसि शब्दो "हन्यतां काफिरोऽसौ",
पतति शिरसि खड्गः खड्गवीरस्य तस्य ॥६०॥

राजा ने यह कठोर बचन सुना। आँखों में क्रोध की आग जलने लगी। आकाश में शब्द हुआ, "इस काफिर को मारो"। तेगबहादुर के सिर पर झट तलवार आ टूटी।

दशमगुरुरपश्यद् वीरोगोविन्दसिंहो
मुगलनृपतिपापं नित्यशो वर्धमानम्।
मुसलिमबलनाशे सिक्खजातेश्च बृद्धौ
सततमकृत यत्नं देश-गो-विप्र-पालः ॥६१॥

दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने देखा कि मुगल बादशाह के पाप नित्य बढ़ रहे हैं। उस देश, गौ और ब्राह्मण, ने लगातार कोशिश की कि मुसल्मानों का जोर कम हो जाय और सिक्खों की जाति की वृद्धि हो।

कृतवति गुरुवर्ये 'खालसा' सम्प्रदायं
नवरुधिरमिवायात् सिक्खजातेः शरीरे।
पितृदिशि शिवराजेनोत्तरे सिक्खसैन्यै—
र्मुगलकुलजराज्यं नाशितं क्षिप्रमासीत् ॥६२॥

गुरु ने खालसा सम्प्रदाय बनाया। उससे सिक्ख जाति के शरीर में नया सा रुधिर आ गया। दक्षिण (पितरों की दिशा) में शिवा जी ने और उत्तर में सिक्ख वीरों ने मुगल कुल के उत्पन्न बादशाहों के राज को शीघ्र ही नष्ट कर दिया।

इत्यार्योदये सिक्खोत्थान–वर्णनं नामाष्टमः सर्गः।

अथ नवमः सर्गः

यदा मुसलमाननृपैः सुभारत-
माच्छादितंचन्द्रवदास्त राहुणा ।
इहस्थवंशस्थचकोरशावका
दिगन्तरेष्वेव मुखानि चक्रिरे ॥१॥

जब मुसलमान राजे भारत पर ऐसे छा गये जैसे चाँद पर राहु, उस समय यहाँ के राजवंशों के चकोर बच्चों (राजकुमारों) ने दूसरी दिशाओं में मुँह फेर लिया । (चकोर चाँद को देखता है । चाँद छिप गया । अतः वह अन्यत्र देखने लगे अर्थात् दूसरे देशों को चल दिये) ।

यदा विदेशीयकरैस्तिरस्कृता
चित्तौडदेशस्य पुनीतमेदिनी ।
कश्चित् तदाऽत्रत्यनरेन्द्र वंशज-
श्चान्यत्र गन्तुं निदधे मनोद्रुतम ॥२॥

जब चित्तौड़ की पवित्र भूमि विदेशी हाथों से तिरस्कृत हो गई तो वहाँ के राजा के वंश का एक राजकुमार दूसरे स्थान पर जाने की बात सोचने लगा ।

अगम्य-दुर्गम्य-महन्मरुस्थल
कृत्वा स पारं च नदीश्च पर्वतान् ।

वनानि चोत्तुंगतरूण्यनेकशः
भाग्यात् प्रपेदे शरणं हिमाचले ॥३॥

अत्यन्त कठिन मार्ग वाले रेतीले मैदानों, नदी, पहाड़ों को तथा ऊँचे ऊँचे वृक्षों वाले जंगलों को पार करके भाग्यवश उसको हिमालय में शरण मिल गई।

अवर्तताऱ्यत्वपरा चिरन्तनी,
सुरक्षिता बाह्यविजेतृ दृष्टिभिः।
प्रभाविता न्यूनतमैः प्रवर्तनै—
र्गिरिप्रदेशेषु विशेषसंस्कृतिः ॥४॥

पहाड़ों में बहुत दिनों से एक विशेष पुरानी आर्य्यत्व परा संस्कृति विद्यमान थी जो बाहर के विजेताओं की दृष्टि से ओझिल थीं और जिस में सबसे कम परिवर्तन हुये थे।

चीनाःकिराताश्च खसादिजातयः
उदाहृता व्यासमनूक्तसूक्तिभिः।
पुरातनी सैव किलार्य्यसन्तति—
रुवास तत्रेव सुदीर्घकालतः ॥५॥

चीन, किरात, खस आदि जातियाँ जिनका महा भारत और मनुस्मृति में वर्णन आता है उसी पुरानी आर्य जाति की सन्तान हैं और उन्हीं पर्वतों में बहुत दिनों से रहती थीं।

तथागतं गौतमबुद्धतापसम्
अजीजनद् यत्र मनोरमे बने।

मायेतिमाता, लघु लुम्बिनीवनम्
इहैव देशे तदु चारु शोभते ॥६॥

जिस सुन्दर वन में 'माया' माता ने तथागत गौतम बुद्ध तपस्वी को जन्म दिया था। वह छोटा लुम्बिनी बन इसी देश में शोभायमान है।

अशोकसम्राडथ तस्य संस्मृतौ
विहारमेकं निरमान् मनोरमम्।
प्रचारका बौद्धमतस्य भिक्षवः
गुरूपदेशान् जगति प्रतेनिरे ॥७॥

और उस (जन्म) की स्मृति में अशोक सम्राट ने वहाँ एक सुन्दर बिहार बनाया था। बौद्धमत के भिक्षु प्रचारक बुद्ध गुरु के उपदेशों को जगत् में फैलाते थे।

ततः परं वेदपवित्रसंस्कृतिः
प्रचारिता शंकरदण्ड-यत्नतः।
मतानि तंत्रात्मपराणि वासिभि-
र्गिरेर्विशेषान्निजसात् कृतानि च ॥८॥

फिर यहाँ शंकर स्वामी के यत्न से वेद की पवित्र संस्कृति का फिर से प्रचार हुआ। पर्वत के वासियों ने तांत्रिक मत को अधिक स्वीकार किया।

इत्थं जराजीर्णविशालसंस्कृति
रनेकधा रोगयुताऽपिजीविता।

सुरम्यशैलेन्द्रजवारिवायुषु
बाह्यात्प्रभावान्निजगोपनं व्यधात् ॥९॥

इस प्रकार बुढ़ापे से जीर्ण पुरानी संस्कृति अनेक रोगों से ग्रसित फिर भी जीवित सुन्दर हिमालय की जल वायु में अपने को बाहर के प्रभाव से सुरक्षित रख सकी।

यदा पठानै मुंगलैस्ताऽऽङ्ग्लजैः
समाःसहस्रं दलितं हि भारतम् ।
नेपालदेशो हिमहर्म्यपीठतः
कुतूहलेनेव ददर्श तत्समम् ॥१०॥

जब पठान, मुगल, अंग्रेज हजार वर्ष तक भारत वर्ष को पददलित करते रहे तब नेपाल देश अपने बरफीले महल की छत से इस सब को कुतूहल से देखता रहा।

यदा यदा मुस्लिमभूमिपा गिरौ
न्यपातयन्नक्षि च लुब्धचेतसा।
हरेस्तु नेपालवनस्य हुंकृते-
र्गोमायुवद् भीतिहताश्चकम्पिरे ॥११॥

जब-जब मुसलमान बादशाहों ने लोभ से पहाड़ पर आँख डाली तभी नेपाल सिंह की हुँकार से गीदड़ के समान डर कर काँप गये।

'नेवार' भूपैःकिल मध्यमे युगे
नेपालघाट्यां प्रततं सुशासनम् ।
नाना विशालाश्च पुरःसमुद्गताः
समुन्नताःसूक्ष्मकलाःपरिष्कृताः ॥१२॥

मध्यकाल में 'नेवार' जाति के राजों ने नेपाल की घाटी में अच्छा शासन जमाया, बहुत से बड़े बड़े नगर बस गये और सूक्ष्म कलाओं की उन्नति हुई।

अवर्ततैका महती खलु त्रुटि
लंघूनि राज्यान्यभवन् पृथक् पृथक्।
मैत्री कदाचिच्च कदाप्यमित्रता
देशस्यशान्ति सततं व्यनाशयत् ॥१३॥

लेकिन एक बड़ी कमी थी। छोटे छोटे राज्य अलग अलग थे। उनमें कभी मेल और कभी लड़ाई रहा करती थी और देश की शान्ति में सदा विघ्न रहता था।

चित्तौडराणा-कुल-दीपको यदा
नेपालराज्यं हतदीप्तिराविशत्।
'पाल्पेति' खण्डे च 'रिरी'ति पत्तने
क्वचित् कथंचित् समवाप सत्क्रियाम् ॥१४॥

जब चित्तौड़ के राना के वंशका कुलदीपक तेजशून्य होकर नेपाल राज्य में आया उस समय 'पाल्पा' प्रान्त के 'रिरी' नगर में किसी प्रकार कहीं उस को आदर मिल गया।

कालेन सैवाग्निलवो लघूकृतो
पुनः समुद्बोधमवाप वायुना।
म्लानाऽपि शाखा सति जीवितेऽङ्कुरे
वर्षर्तु काले हरिता यथा भवेत् ॥१५॥

जैसे शाखा सूखजाय और अहंकार हरा रहे तो वर्षा में वह फिर हरी हो जाती है इसी प्रकार समय पाकर वह तिरस्कृत

छोटा सा आग का टुकड़ा वायु द्वारा फिर प्रज्वलित हो उठा।

शनैःशनैःसंततिरस्य भूपतेः
समस्तदेशे प्रससार शक्तितः ।
प्रस्थापितं गोरखनाम्नि पत्तने
केन्द्रं महत् तैः सुभटैर्यशोधनैः ॥१६॥

धीरे धीरे उसी राणा की सन्तान अपने बल से देश भर में फैल गई और उन यशस्वी वीरों ने 'गोरखा' नामक नगर में अपना बड़ा केन्द्र स्थापित किया।

('गोरखा' नेपाल का एक नगर है। वहीं से गोरखों का यह नाम पड़ा)

सर्वासामेव शाखानां नेपालस्य महीभुजाम् ।
"शाह" शाखा प्रसिद्धाऽस्ति कीर्तावायुषि विक्रमे ॥१७॥

नेपाल के राजों की सब शाखाओं में कीर्ति, आयु, पराक्रम सब में 'शाह' शाखा प्रसिद्ध है।

मूलमस्यास्तुशाखाया द्रव्यशाहो महीपतिः ।
गृहीतं येन वीरेण गोरखा पत्तनं बलात् ॥१८॥

इस शाखा का मूल था, 'द्रव्यशाह'। जिस वीर ने बलात् गोरखा नगर को ले लिया।

पृथ्वीनारायणो बीरो मतिमान् बलवांस्तथा ।
चातुर्येण स जग्राह नेपालस्याखिलां महीम् ॥१९॥

बुद्धिमान् और बलवान् वीर पृथ्वी नारायण ने चातुर्य से नेपाल का समस्त देश ले लिया।

भूपान् नेवारजान् जित्वा "काठमाण्डौ" च "पाटने"।
"कीर्तिपुरे" "भगद्ग्रामे" चक्रे संयुक्तशासनम् ॥२०॥

इस राजा ने नेवार जाति के राजों को जीतकर काठमाण्डु, पाटन, कीर्तिपुर और भगत गांव के राज्यों को मिलाकर एक कर लिया।

लघुराज्यानि संपिण्ड्य दान्त्वा हत्त्वा रिपूँस्तथा।
शक्त्या नीत्या च नेपालस्तेन पूर्णबली कृतः ॥२१॥

छटे राज्यों को मिलाकर और शत्रुओं को दबाकर या मार-कर इस राजा ने शक्ति तथा नीति से नेपाल को शक्तिशाली बना दिया।

प्रसूतौ तस्य भूपस्य विविधा बलधारिणः।
बभूवुर्गोपितं यैश्च स्वातंत्र्यं बुद्धितो बलात् ॥२२॥

उस राजा की सन्तान में कई वलवान् पुरुष हुये जिन्होंने बुद्धि से और बल से स्वतंत्रता की रक्षा की (अर्थात् बाहर वालों को घुसने नहीं दिया।)

आर्य्यावर्त्तमखडमाङ्ग्लपुरुषा लब्ध्वा मदेनान्विता
नेपालस्यगिरेः प्रदेशमखिलं जेतुं मनश्चक्रिरे।
आजौ तेऽपि पराजिता गिरिभटैः शैलेन्द्रजैर्गोरखैः।
साम्राज्यं परिकल्पितं च बृटिशैरन्तेगतं भ्रष्टताम् ॥२३॥

जब अङ्गरेजों ने समस्त भारतवर्ष को प्राप्त कर लिया तो उनको मद हो गया। और उन्होंने नेपाल के संघ पहाड़ी इलाके को जीतना चाहा। वीर पहाड़ी गोरखों ने लड़ाई में उनको भी परास्त कर दिया। बृटिश लोगों ने जिस बड़े साम्राज्य की कल्पना की थी वह सब अन्त में गड़बड़ हो गया।

आङ्ग्लैःपुष्कलसाधनैस्तु पुनरप्याच्छादिताः पर्वताः ।
संख्या-शक्ति-नवीनशस्त्रविधिभिर्लब्धो जयः शत्रुषु ।
नेपालस्य नयज्ञवृद्धपुरुषैराङ्ग्लैस्तथा कीर्तिपै—
र्हानिं वारयितु परन्तु दलयोः सन्धिः कृतः शीघ्रतः ॥२४॥

अङ्गरेजों ने बहुत से साधनों द्वारा पहाड़ों को फिर घेर लिया। संख्या, शक्ति तथा नये हथियारों से उन्होंने नेपाल वालों पर विजय पाली। इस पर नेपाल के वृद्ध नीतिज्ञ पुरुषों ने और अपनी कीर्ति कहीं फिर चली न जाय ऐसी आशङ्का करने वाले अङ्गरेजों ने अपने अपने दल की हानि से बचने के लिये शीघ्र सन्धि करली।

नेपालस्य च भारतस्य दलयोरद्यावधि स्निग्धता,
व्यापारे समरे समाजनियमे निर्यातसंयातयोः ।
संपत्तौ विपदि क्षतौ च लभने देशस्य कीर्तौ तथा,
नेतृणामुभयोः करोति सुधिया शान्तिं सुखं पक्षयोः ॥२५॥

नेपाल के और भारतवर्ष के दोनों दलों में आजतक वही कोमलता व्यापार, युद्ध समाज, यातायात संपत्ति, विपत्ति, हानि लाभ कीर्ति आदि में अब तक विद्यमान है। दोनों दलों के नेताओं की बुद्धिमत्ता से दोनों दलों में सुख और शान्ति रहती है।

जङ्गबहादुरो राणा, आसीदेको महाजनः ।
विधानं येन राज्यस्य सर्वथा परिवर्तितम् ॥२६॥

जंगबहादुर राणा नामके एक बड़े पुरुष हुये। उन्होंने राज्य का विधान बिल्कुल बदल दिया।

निरंकुशं नृपं दृष्ट्वा राज्ञीश्च कलहप्रियाः।
कुमंत्रितान् कुमारांश्च, राज्यं शान्तिविवर्जितम्।
लब्ध्वा स्ववसरं तेन, पुंगवेनाजिचेतसा।
हत्वा नेतृन् दलानां च मंत्रित्वपदवी हृता ॥२७॥

उन्होंने देखा कि राजा निरंकुश है। रानियों में लड़ाई रहती है। राजकुमार अयोग्य है। और राज्य में अशान्ति रहती है। अतः अच्छा अवसर पाकर उस बहादुर पुरुष ने युद्ध की मनोवृत्ति धारण करके सब दलों के नेताओं को मारकर महा मन्त्री की पदवी अपने लिये छीन ली। (बलात्कार मन्त्री बन गया)।

नेपालस्य ततो राज्यं राणावंशे विराजते।
राजा तु नाममात्रेण राजपीठे सुशोभते ॥२९॥

तब से नेपाल का राज राणा के वंश के आधीन है। राजा तो नाम मात्र सिंहासन पर बैठा हुआ है। (नेपाल में राजा को पाँच सरकार कहते हैं उसका कोई अधिकार नहीं है। समस्त अधिकार महामन्त्री राणा को है जो तीन सरकार कहलाता है)।

चन्द्रशम्शेरजङ्गश्च तत्सुता मोहनादयः।
नेपालाद्रिप्रदेशस्य रक्षन्त्येव स्वतन्त्रताम् ॥३०॥

चन्द्र शम्शेर जंग तथा उसकी सन्तान मोहन शम्शेर जंग आदि नेपाल के पहाड़ी राज की स्वतन्त्रता की रक्षा कर ही रहे हैं।

भारते जनतंत्रत्वं वीक्ष्य नेपालजैर्जनैः।
ईप्स्यते जनसंवृद्धयै सर्वं शासनपद्धतिः ॥३१॥

भारतवर्ष में जनतन्त्र शासन को देखकर नेपाल के लोग भी उसी शासन पद्धति को चाहते हैं।

भारतराज्यनेतारो मानवहितकाम्यया ।
करिष्यन्त्येव साहाय्यं नेपालनिवासिनाम् ।।३२।।

मनुष्य मात्र के हित की इच्छा से भारत नेता नेपाल की सहायता करेंगे।

नेपालस्य सुहृत्तंत्री भारते पुनरुत्थिते ।
समुत्थापयिताऽवश्यं तां प्रत्नां वेदसंस्कृतिम् ।।३३।।

भारतवर्ष के फिर खड़े होने पर नेपाल के हृदय की तन्त्री अवश्यमेव उस प्राचीन वेद संस्कृति को फिर उन्नत करेगी।

इत्यार्योदये नेपाल वर्णनं नाम नवमः सर्गः ।

अथ दशमः सर्गः

स्वातंत्र्यं बहुमूल्यरत्नमतुलं सौभाग्यसम्मानदं
प्राप्तव्यं मनुजैरपापचरितैः शुद्धात्मभिः केवलम् ।
येषां नास्ति तपो न सत्यमृजुता, त्यागो न वा धीरता,
शत्रूणाँ क्षयमात्रतो न जगति, स्वातन्त्र्यमर्हन्ति ते ॥१॥

स्वतन्त्रता अतुल बहुमूल्य रत्न है। सौभाग्य और सम्मान की देने वाली है। यह केवल उन्हीं को प्राप्त होती है जो पुण्यात्मा और शुद्ध हैं जिन में तप, सत्य, सीधापन, त्याग, धीरता नहीं है वे स्वतन्त्रता को प्राप्त नहीं कर सकते चाहे उनके शत्रु नष्ट ही क्यों न हो जाय अर्थात् शत्रुओं के नाश से ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि नहीं होती।

सत्यं, सिक्खजनैः प्रणष्टमखिलं दिल्लीपतीनां बलं
उत्थानं न पुनः कदापि मुगलास्तस्मात् क्षणाच्चक्रिरे ।
कुण्ठीकृत्य मुहम्मदीय-परशुं तिग्मं कृपाणेन सः
पञ्चाम्बौ रणजीतसिंहनृपतीं राज्यं नवं निर्ममे ॥२॥

यह ठीक है कि सिक्खों ने दिल्लों के बादशाहों का सब बल नष्ट कर दिया। उस क्षण से मुगल अपना सिर न उठा सके। अपनी कृपाण से मुसलमानों के तेज खड्ग को कुण्ठित कर के राजा रणजीत सिंह ने पंजाब में नया राज्य स्थापित किया।

एषा स्वास्थ्यकरी न वृद्धिरभवद् देहस्य शोफो यथा,
दोषा रोगसमा उपद्रवयुताः सिक्खेषु चक्रः पदम् ।

शक्त्या मत्सरता, धनेन विषयासक्तिर्मदोऽविद्यया,
द्वेष-द्रोहदुराग्रहा अवगुणास्तेषामकुर्वन् क्षयम् ॥३॥

जैसे शरीर की सूजन से स्वास्थ्य लाभ नहीं होता ऐसे ही सिक्खों की इस वृद्धि से कोई लाभ नहीं हुआ। रोग के समान अनेक उपद्रव करने वाले दोष सिक्खों में घुस गये। शक्ति आई तो मत्सरता भी आ गई। धन हुआ तो विषयशक्ति भी हुई। अविद्या के साथ मद आया द्वेष, द्रोह, दुराग्रह रूपी अवगुणों ने सिक्खों का नाश कर दिया।

स्तूयन्ते क्षितिपा मृषैव कविभिः सिंहोपमोत्प्रेक्षया
सिंहत्वं न बिभर्ति भूपतुलनां केनापि वै हेतुना।
स्वच्छन्दं विचरन्त्यसुभृतस्त्रासं ददानाः सदा
सिंहा हिंसकवृत्तिसाधनपराः संख्यानशून्या जड़ाः ॥४॥

कवि लोग शेरों की उपमा देकर राजों की व्यर्थ ही प्रशंसा किया करते हैं। शेर और राजा की तो किसी प्रकार तुलना नहीं हो सकती। शेर स्वच्छन्द विचरते हैं। प्राणियों को डरा डरा कर खा जाते हैं। सिंहों की हिंसक वृत्ति होती है। उनमें ज्ञान नहीं होता। जड़ होते हैं।

भूपास्त्यागतपोधनाः सुपठिता रक्षाविधौ प्राणिनां
नित्यं क्षात्रगुणैर्युता जनहितं कुर्वन्ति शास्त्राज्ञया।
भूपाः सिंहसमा यदा समभवन् देशोऽगमद्धीनतां
त्यक्त्वा सिंहसमानतां नृपतयः कुर्वन्ति देशोन्नतिम् ॥५॥

राजे त्यागी तपस्वी और प्राणियों की रक्षा की विद्या में निपुण होते हैं। शास्त्र गुणों से युक्त होते हैं और शास्त्र की

आज्ञा के अनुसार मनुष्यों का हित करते हैं। जब से राजे शेर बन गये देश का नाश हो गया। वे राजे ही देश की उन्नति कर सकते हैं जिन्होंने शेर की बराबरी करना छोड़ दिया।

उद्देशा गुरुनानकेन नियताः प्रायः समग्रा गता,
भावाः पूर्वमहात्मभिर्निगदिताः पुंभिर्नवैर्विस्मृताः।
निर्बाधं जनिते नियुद्धकलहे सर्वेऽगमन् विक्रियां,
सिद्धान्ता अवहेलिताः सिखगणैः शान्तिप्रदाः स्वस्तिदाः।६।

गुरु नानक ने जो उद्देश्य सिक्खों के लिये नियुक्त किये थे वे सब चले गये। पुराने महात्मा लोगों के बताये हुये भावों को नये लोग भूल गये। निरन्तर युद्ध होता रहा। इससे सब चीजें विकृत हो गईं। सिक्खों ने शान्तिप्रद और कल्याणकारी सिद्धान्तों का तिरस्कार किया।

बाहू देहमिवाङ्गभावमधिकृत्यात्मवृत्त्या पुरा
पातुं जातिमरिप्रहारदुरितात् सिक्खाः सदा येतिरे।
पश्चाच्छासनलोभवृत्तिरभवत् तेषां समुद्वाहिनी,
यावत् ते तु शनैः शनैर्निरगमन् छिन्नेव शाखा तरोः ॥७॥

जैस दो भुजायै अंग भाव से शरीर की रक्षा करती हैं वैसे ही पहले सिक्ख लोग अध्यात्म भाव से शत्रु के प्रहार रूपी दुरित से जाति को बचाने का यत्न करते थे। पीछे से उनमें हुकूमत का लोभ आ गया। और वह जाति के साथ ऐसा व्यवहार करने लगे जैसे कटी हुई शाख वृक्ष की।

आसीद् दक्षिणदेशशासनविधौ सैवापि दुःसाध्यता।
दिल्लीभूपविभूतिनाशमकरोत् सेना शिवस्य ध्रुवम्।

तस्मिन् किन्तु मृते व्यवस्थितिरसौ प्राप्ता विचित्रां गतिं,
राज्यं वृद्धमवश्यमेव, सुमतिर्देशाद् बहिर्निर्गता ॥८॥

दक्षिण देश के शासन में भी वही बुराई हुई। यह ठीक है कि शिवाजी की सेना ने दिल्ली के बादशाह की विभूति नष्ट कर दी। परन्तु जब शिवाजी मर गया तो व्यवस्था विचित्र हो गई। राज्य तो बढ़ा परन्तु सुमति देश से भाग गई।

अध्यक्षा बहवो मिथो युयुधिरे स्वच्छन्दताकांक्षिणः,
नानावर्गविभाजिता जनगणा पस्पर्धिरे शक्तये।
सन्तानस्य च मन्त्रिणश्च दलयोर्द्वेषः शिवा-भूपते-
र्ब्रह्मक्षत्रसहानुभूतिविषये प्रत्यूहचक्रं व्यधात् ॥९॥

स्वच्छन्दता के इच्छुक बहुत से अध्यक्ष परस्पर युद्ध करते रहे। भिन्न भिन्न वर्गों में बटे हुये लोग शक्ति के लिये स्पर्धा करते रहे। शिवाजी महाराज की सन्तान और मन्त्रियों के बीच का द्वेष ब्राह्मण और क्षत्रिय दलों का द्वेष बनाकर स्थिति में गड़बड़ फैलाता रहा।

राजस्थानकुलानि, सिक्खगणपा एवं महाराष्ट्रजाः,
शेषा मुस्लिमराजवंशपुरुषास्तुर्काः पठानास्तथा।
यूरोपीयवणिग्जनाः खलु डचा आंग्लाः फिरंचादयः
सर्वे भारतवर्षनिग्रहधियश्चान्दोलनं चक्रिरे ॥१०॥

राज स्थान के राज वंश, सिक्ख सरदार, महाराष्ट्र के संस्थानों के मालिक, मुसल्मान राज वंशों के बचे हुये लोग तुर्क, पठान आदि, यूरोप के बनिये डच अङ्गरेज फरांसीसी सब भारत वर्ष को हड़पने के लिये आन्दोलन करने लगे।

दृष्ट्वा मृत्युमुखे समागतपशुं मन्दं चिराद् रोगिणं
गृध्रा रक्तपिपासवः प्रमुदिता धावन्ति देशान्तरात् ।
कर्तित्वा स्वनखैश्च चञ्चुपुटकैः पिण्डास्तनोः प्राणिनः,
क्रीडायुद्धविमिश्रितप्रगतिभिर्मासं मुदा भुञ्जते ॥११॥

चिर रोगी सुस्त पशु को मरता हुआ देखकर लोहू के प्यासे गिद्ध खुश होकर दूसरे देशों से दौड़ आते हैं। और नाखूनों तथा चोंच से पशु के शरीर के मांस को खेलते तथा लड़ते आनन्द से खाते हैं।

दृष्ट्वा भारतवर्षदेशमवितुं शक्त्या विहीनं स्वयं
देशीयाश्च विदेशिनो धृतमहातर्षप्रकर्षाः श्रियः ।
हिन्दू-मुस्लिमभेदबीजवपने आंग्लाः क्षितौ दीक्षिताः
काले भारतवर्षदेशमखिलं चक्रुर्वशे स्वात्मनः ॥१२॥

जब लोगों ने देखा कि भारतवर्ष अपनी रक्षा आप करने में असमर्थ है तो देशी और विदेशी दोनों लोगों की तृष्णा अधिक बढ़ गई। अङ्गरेज लोग संसार भर में हिन्दुओं और मुसलमानों में झगड़ा कराने में दक्ष हैं। अतः समय पाकर इन्होंने समस्त भारतवर्ष को ले लिया।

आंग्लाः फ्रांसनिवासिनश्च वणिजो वाणिज्यकार्य्यार्थिनः
आयाताः क्रयविक्रयाय सततं देशाधिपस्याज्ञया ।
काले निर्ममिरे च भाण्डवसतीः सिन्धोस्तटे मुख्यत-
इत्थं वर्षशतद्वयं समवसन् शान्त्या च निःशङ्कया ॥१३॥

अङ्गरेजी और फरांसीसी बनिये जो देश के राजाओं की आज्ञा से व्यापार के लिये यहां बराबर माल लेने और बेचने के

लिये आया करते थे। उन्होंने समुद्र के किनारे अपने गोदाम बना लिये और दो सौ वर्षों तक शान्ति से शंका रहित होकर रहा किये।

आरंभे वणिजो विनम्रहृदयाः कर्पासवत् कोमलाः
स्निग्धाः स्नेहयुताः स्वभावसरला वाचं प्रियामूचिरे।
नत्वा भारतभूमिपांश्च सततं नीत्या विनीत्याऽथवा
सम्पत्तिं शनकैर्धनं जनबलं सेनाबलं चाप्नुवन् ॥१४॥

यह बनिये आरम्भ में कपास के समान कोमल और नरम थे। चिकने चुपड़े प्रेम वाले, सरल स्वभाव के, और वाणी से प्रिय बोलते थे। भारतवर्ष के राजों के सामने सदा नीति या विनय से सिर नवाते थे। शनैः शनैः इस प्रकार उन्होंने धनबल, जनबल और सेना बल प्राप्त कर लिया।

दृष्ट्वा राज्यनियंत्रणं शिथिलितं केन्द्रेऽथवा सर्वतो
ज्ञात्वाऽन्यान्यदलेषु तीव्रकलहं लोकांस्तथा पीडितान्।
रक्षार्थं कृतवन्त एव वसतीः शस्त्रैः सुसम्पादिता
देशीयान् लघुवेतने युयुजिरे सेनासु सैन्यान् जनान् ॥१५॥

यह देखकर कि केन्द्र में अथवा सर्वत्र राज का नियन्त्रण ढीला है, और यह जानकर कि भिन्न-भिन्न दल लड़ते हैं, और लोगों को सताया जा रहा है उन्होंने अपनी गोदाम को हथियारबन्द कर लिया और देशी सिपाहियों को थोड़े-थोड़े वेतन पर सेनाओं में नौकर रख लिया।

डूप्ले नाम फरांसदेशवणिजां लोकाधिपो भारते
द्वे वृत्ती खलु वीक्ष्य भारतनृणामन्वैषिषन्मूलतः।

एका स्वल्पधनाय कार्य्यकरणं यूरोपसेनान्तरे,
अन्या चात्मनृणां बधेत्र समरे संकोचलेशोऽपि नो ॥१६॥

फरांस के बनियों का भारत में मुखिया डूप्ले था। उसने देख-भाल कर भारतवर्ष के मनुष्यों की दो वृत्तियों को खोज निकाला। एक तो यह लोग यूरोप की सेना में थोड़ा वेतन लेकर कार्य्य कर सकते हैं और दूसरी वृत्ति यह है कि लड़ाई में यह अपने देशी भाई को भी बिना संकोच के मार डालते हैं।

दृष्ट्या देशहितैषिणामवगुणा लाभप्रदाः शत्रवे
शीघ्रं देशमदुर्विदेशवणिजे राज्यश्रियः कांक्षिणे।
आङ्ग्लाः क्लायवनेतृतावलयितास्तामेव नीतिं दधु—
र्देशीयां पृतना नियुज्य कृतवान् सोऽपि क्षयं देशिनाम् ॥१७॥

यह दो वृत्तियाँ देश हितैषी लोगों की दृष्टि से तो अवगुण थे। परन्तु शत्रु के लिये लाभ प्रद थी। इन्होंने शीघ्र ही देशको विदेशी बनियों के हवाले कर दिया। अंगरेज क्लायव के नेतृत्व में इसी नीति को वर्तने लगे। उन्होंने एक देशी सेना बनाई और देशियों को ही हानि पहुँचाने लगे।

साहाय्येन तरो र्हि तक्षति वनं तक्षाकुठारायुधो,
गृह्यन्ते करिणो विना न करिभिः केनापि पुंसा वने।
यावन्नास्ति सहायता गृहनृणां तावन्न जेयं गृहं
संकेतेन हि देशिनां सुविजिता देशाः सदा शत्रुभिः ॥१८॥

बढ़ई को जब तक वृक्ष की सहायता नहीं मिलती (अर्थात् बृक्ष की लकड़ी का बेट जब तक कुल्हाड़ी में नहीं डालता) तब तक कुल्हाड़ी से बन को नहीं काट सकता। बन में कोई

आदमी हथिनियों की सहायता के बिना हाथी नहीं पकड़ सकता। जब तक घर के भेदी नहीं मिलते घर पर विजय नहीं मिलती, देश के लोगों के ही इशारे से शत्रु देशों को जीतते हैं।

क्रीता आङ्ग्लफरांसदेशधनिभिश्चार्थैरिहैवार्जितैः
सेना भारतदेशजा हि ददिरे तेभ्यः स्वदेशं प्रियम्।
अन्तर्बाह्यकुनीतिचक्रगतिभिर्दीनत्वमायात् पुनः,
झंझाप्रेरितगेहदीपशिखया गेहं गतं भस्मताम् ॥१९॥

यहीं के कमाये हुये रुपये से अंगरेज़ों और फरांसीसियों ने भारत में उत्पन्न हुई सेना को खरीद लिया और उनसे अपना प्यारा देश उनके हाथ में दे दिया। भीतर और वाहर की कुनीति के चक्र से फिर भारत दास हो गया। आँधी के झकोरों से घर के दीपक ने ही घर को भस्म कर दिया।

(इस घर को आग लग गई घर के चिराग से)।

डूप्ले-क्लायवयोर्य आजिरभवद् देशस्य पुण्यक्षितौ,
तस्मिन् भारतमातुरेव युयुधेऽपत्यं द्वयोः पक्षयोः।
यस्मादाङ्ग्लदलो बभूव विजयी जग्राह देशं तथा
लेभे चैव पराभवं पर दलो, डूप्ले प्रतीपं गतः ॥२०॥

इस देश की पुण्य भूमि में जो लड़ाई क्लायव और डूप्ले में हुई उसमें दोनों ओर से भारत माता की सन्तान ही लड़ती थी। उसमें अंगरेज जीत गये और उन्होंने देश को ले लिया। फरांसीसी हार गये और डूप्ले का पतन हो गया।

व्यापाराय समागता हि बृटिशा राज्यास्पदं लेभिरे,
चातुर्येण सुविद्यया नयधिया विज्ञानबुद्ध्या तथा।

शीघ्रं भारतवर्षदेशमखिलं निन्युः स्वकीये वशे,
स्वीचक्रे ब्रिटनाधिपस्य नृपता सर्वैरिहस्थैर्जनैः ॥२१॥

अङ्गरेज आये तो थे व्यापार के लिये और चातुर्य, विद्या नीति विज्ञान और बुद्धि के बल राजे बन गये। समस्त भारत को शीघ्र अपने वश में कर लिया और यहाँ के सब लोगों ने ब्रितानिया के राजा के शासन को स्वीकार कर लिया।

संस्पर्शेन तथा मणेः कनकतां लोहः समागच्छति,
श्रद्धाः प्राप्य तथा सुवर्णधरणीमाङ्ग्ला अभूवन्निमाम्।
एतद्भूमिजवस्तुजालमनयन् देशे स्वके सर्वतो
विद्याभिश्च कलाभिरन्यविधिभिः स्वार्थं समापूरयन् ॥२२॥

जैसे पारस मणि के छूने से लोहा सोना हो जाता है इसी प्रकार इस सोने की भूमि को पाकर अङ्गरेज धनी बन गये। इस देश की समस्त उपज को अपने देश में ले गये और विद्याओं कलाओं तथा अन्य रीतियों से अपना स्वार्थ साधने लगे।

रोमन्-पद्धतिना हि तैरिह सदा सम्पादितं शासनं,
निःशस्त्राः पुरुषाः कृता, निजकरे सर्वाः कला रक्षिताः।
विज्ञानैर्यदिभूषिता क्षितिरियं वाष्पीययानादिभिः
सर्वं स्वार्थहिते कृतं, जनहिते किञ्चिन्न सम्पादितम् ॥२३॥

उन्होने सदा रोमन पद्धति से शासन किया। लोगों से हथियार छीन लिये। सब कलायें अपने हाथ में रक्खी। यदि इस देश को उन्होंने रेल आदि भाप की कलों से विभूषित किया भो तो अपने स्वार्थ के लिये। प्रजा के लिये कुछ भी नहीं किया।

साम्राज्यं बृटिशं समाप पृथुतां दृष्टां न पूर्वैर्जनै—
र्भूभागान् प्रमुखान् वशे समनयन् सर्वेषु खण्डेषु ते ।
अस्तं गच्छति नैव राज्यबृटिशे तिग्मांशुमान् भास्करः,
एषा प्राप जनश्रुतिः प्रगुणिता ख्यातिं परां भूतले ॥२४॥

बृटिश साम्राज्य इतना फैला जैसा पुरखों ने कभी न देखा था। सब महाद्वीपों में जो प्रमुख भाग थे वे सब इसके वश में आ गये। "बृटिश राज्य में सूर्य्य कभी अस्त नहीं होता" ऐसी कहावत संसार में फैल गई।

बुद्धिर्ज्ञानमपूर्वशासनविधिर्नीतिः कला संगति—
र्जातिप्रेम, च देश भक्तिरमला, शौर्यं घृतिर्बन्धुता ।
एतैः शुभ्रगुणैरलंकृतजना, आंग्ला नृणां पुङ्गवाः
क्षुद्रदीपनिवासिनाऽपि जगति प्रामुख्यमश्वाप्नुवन् ॥२५॥

बुद्धि, ज्ञान, असाधारण शासन विधि, नीति, कला, मेल-जोल, जाति प्रेम, शुद्ध देश-भक्ति, बहादुरी, धैर्य्य, भ्रातृभाव इन सब अच्छे गुणों से युक्त वीर अंगरेजों ने छोटे से द्वीप के निवासी होते हुये भी संसार में प्रमुखता प्राप्त करली।

संपकर्णे यविष्ठाजात्यसुभृतां प्रत्नेयमार्य्यप्रजा,
नानारूपकलाकलापजनितैर्लाभै र्युताऽजायत ।
विद्युच्चुम्बकवाष्पशक्तिगतिमद् यंत्राण्यवेक्ष्याद्भुता—
न्याङ्ग्लान् देशनिवासिनो नुपगणान् देवोपमान् मेनिरे ।२६।

युवाजाति के लोगों के सम्पर्क से बूढ़ी आर्य्य प्रजा अनेक प्रकार के कला कलाप के लाभों से युक्त हो गई। बिजली,

चुम्बक, भाप से चलने वाले अद्भुत इन्जनों को देखकर देश के अंगरेजों को देवता मानने लगे।

रेलं वाष्पबलेन सप्तिरहितं वायोःसमं चालितं,
विद्युत् प्रेरिततारशब्दवहनं दूरे गमं शीघ्रतः।
फोनं क्रोशसहस्रतो निगदनं वाचां समीपादिव
एता वीक्ष्य जना विचित्र घटना आपेदिरे विस्मयम् ॥२७॥

बिना घोड़ों के भाप की शक्ति से हवा के समान तेज चलने वाली रेलगाड़ी, विद्युत के द्वारा बहुत दूर तक तार का शब्द जाना, टेलीफोन हज़ार कोश से ऐसे बात करलो जैसे पास बैठे हों। ऐसी विचित्र घटनाओं को देखकर लोग चकित रह गये।

सर्वं स्वर्णमयं सुवर्णममलं प्रायो न संसिध्यति,
सत्यस्यास्ति हिरण्मयेन पिहित पात्रेण लोके मुखम्।
वर्षन्त्येव सुधारसं जलमुचः कृष्णा, न ते ये सिताः,
शून्या गन्धफलैर्भवन्ति बहुधा रूपान्विताः किंशुकाः ॥२८॥

सभी चमकदार चीजें खरा सोना नहीं होतीं। लोक में सत्य का मुँह चमकीले ढक्कन से ढका रहता है। काले बादल बरसते हैं सफेद बादल नहीं। ढाक के सुन्दर फूलों में गन्ध नहीं होती।

वित्तार्थं हि समागता यदभवन् देशप्रजापालका,
आंग्ला द्वीपहितार्थमेव सततं चेष्टां समां ते व्यधुः।
आंग्लेभ्यो हि ददुः प्रमुख्यपदवी राज्ये तथा शासने
पुंसोभारतवासिनो निरुरुधुश्चोत्कर्षमार्गात् सदा ॥२९॥

१४

यह राजे धन के लिये आये थे। इसलिये इन्होने सदा इङ्गलैण्ड के हित के लिये चेष्टा की। राज में या प्रबन्ध में बड़ी नौकरियाँ अंग्रेजों को ही दी गईं। भारत के लोगों को सदा उन्नति के मार्ग से रोकते रहे।

नोचेच्छासन पारतंत्र्यनिगडान् भञ्ज्यात् कदाचित् प्रजा,
निःशस्त्रा अत एव भारतजना आंग्लनृपालैः कृताः।
निर्माणं क्रयविक्रयौ च मनुजैः शस्त्रस्य योगस्तथा
दण्ड्यं राज्यविधानतः समभवत् सर्वं नृपाज्ञां विना।३०।

कहीं ऐसा न हो कि प्रजा शासन के पाशों को तोड़ डाले। इसलिये अंग्रेज राजों ने भारत वर्ष के लोगों से हथियार छीन लिये, ऐसे नियम बनाये कि राजा की आज्ञा के बिना जो कोई अस्त्र बनावे, खरीदे, बेचे या प्रयोग करे वह दण्डनीय हो।

आंग्ला एव भवेपुरस्य जगतो मुख्यास्तथा स्वामिनः,
तस्मात् ते न शिशिक्षिरे परजनान् सूक्ष्माः कलाःसौख्यदाः।
निन्युर्भारतदेशतश्च सकलान्यामानि वस्तूनि ते,
संभारान् विविधान् ततः स्वकलया कृत्वात्र संप्रेषयन्।३१।

दुनियाँ भर में अंग्रेज ही बड़े रहें इससे उन्होंने दूसरों को बारीक कलायें नहीं सिखाई। भारत से सब कच्चा माल ले गये और अपनी कला से तरह-तरह का माल बनाकर यहाँ भेजने लगे।

इत्थंभारतदेशहेमनिकरं देशाच्छनैर्निर्गतं,
देशीयाः सकलाःकला विकलिता दारिद्र्यमापुर्जनाः।

दारिद्र्यात् परतंत्रता समभवत् तस्मात्तथा दीनता,
दीनत्वं च दरिद्रता जगृहतुर्देशं स्वपाशे क्रमात् ॥३२॥

इस प्रकार शनैः शनैः भारत देश से सोना बाहर चला गया। देशी कलायें बिगड गईं। दरिद्रता आगई। दरिद्रता से परतन्त्रता आई। परतन्त्रता से दीनता आई। दीनता और दरिद्रता ने दोनों ने क्रम से देश को अपने जाल में रक्खा।

यासीदार्यगिरा चिराद् विकसिता देवैः पुरा संस्कृता,
पूर्णा पूर्णविचार जात सुयुता पूर्णेशभक्तिप्रदा।
यस्यामार्य्यपरम्परा प्रणिहिता सर्गादितो वर्द्धिता
सा भाषाऽप्यवमानिता गुरुजनैः पाश्चात्य-भा-भासितैः।३३।

जो आर्य्यों की भाषा बहुत दिनों से विकसित थी जिसे देवों ने पहले संस्कृत किया था। जो पूर्ण थी और पूर्ण विचार वाली थी, जो पूर्णेश अर्थात भगवान की भक्ति सिखाने वाली थी। जिसमें आर्य्य परम्परा निहित थीं जो सृष्टि की आदि से ही बढ़ी। उस भाषा का बड़े लोग पश्चिमी प्रकाश के चकाचौंध में अपमान करने लगे।

देशीया इतरा गिरो व्यवहृताः प्रान्तेषु भिन्नेषु याः,
रुद्धास्ता अपि शासकैर्ब्रटनजैर्विस्मृत्य लाभं नृणाम्।
भाषाङ्गला वितता प्रसह्य परितो भावैर्नवैः पूरिता,
बाला नूतनसभ्यतां च निपपुर्दुग्धं जनन्या यथा ॥३४॥

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो दूसरी भाषायें बोली जाती थीं, उनको अंगरेजों ने लोगों को भुलाकर रोक दिया। नये भावों

से भरी हुई अंगरेजी जबरदस्ती चलाई गई। बच्चे नई सभ्यता को माता पिता के दूध के समान पीने लगे।

मत्वाङ्ग्लान् स्वगुरून्, स्वदेशविदुषां मानं जनैर्हेलितम्
देशीयान् सुगुणान् विहाय दुरितान्याङ्ग्लानि ते शिश्लिषुः।
मद्यं मांसमनात्मवाद इतरे पाश्चात्यदोषास्तथा
विज्ञानस्य मिषेण भारतजनान् निम्नोन्मुखाँश्चक्रिरे ॥३५॥

अंगरेजों को गुरु मानकर लोगों ने अपने विद्वानों की अवहेलना की। अच्छे देशी गुणों का त्यागकर अंगरेजों की बुराइयाँ ग्रहण कीं। अवनति करने वाले भारत वासियों ने विज्ञान के बहाने मद्य, मांस, नास्तिकता आदि पश्चिमी दोषों को ग्रहण किया।

आंग्लाः ख्रीष्ट मतप्रचाररुचयः प्रोत्साहितास्तन्मते
आगच्छन् बहवः प्रचारकगणाः पाश्चात्यदेशादिह।
केचिद् वैदिकधर्मतत्त्वविमुखा नव्ये मते दीक्षिता,
इत्थं वैदिकसंस्कृतेरपचयो निःशेषतोऽजायत ॥३६॥

अङ्गरेजों की ईसाई धर्म के प्रचार में रुचि थी। अतः उसने ईसाई मत में प्रोत्साहित किये हुये पश्चिमी देशों से बहुत से प्रचारक भारतवर्ष में आने लगे। कुछ लोग जो वैदिक धर्म के तत्व को नहीं समझते थे नये मत में दीक्षित हो गये। इस प्रकार निश्चित रूप से वैदिक धर्म का ह्रास होने लगा।

एकाऽऽसीत् तु विशेषताऽऽङ्ग्लसमये, केन्द्रीकृतं भारतं,
देशः शासनविप्लवेषु बहुषु प्रान्तेष्वदीर्घेषु यद्।

प्रायः स्वार्थं परायणैर्मनुजपैरासीद् विभक्तः पुरा,
तान् प्रान्तान् हि मिथो नियुज्य बृटिशा राज्यं महच्चक्रिरे ।

अङ्ग्रेजों के समय की एक अच्छी बात थी, समस्त भारत केन्द्रीय भूत कर दिया गया । शासन के विप्लवों में देश को स्वार्थी रईसों ने पहले छोटे-छोटे कई प्रान्तों में बाँट रखा था । बृटिश लोगों ने उन सब प्रान्तों को मिलाकर एक बड़ा राज्य बना लिया ।

दासत्वेऽपि समानभावमविदन् साम्राज्यसम्पर्कजं,
प्रान्ताः पूर्वविभिन्नतां च कटुतां विस्मृत्य सामान्यतः ।
पादाक्रान्तरजः कणा अपि पथः कुर्वन्ति सम्मेलन—
मापत्तावनुभूय दुःखसमतां पिण्डीभवन्त्येव च ॥३८॥

उन प्रान्तों ने पुरानी कटुता तथा भेद भावना को भुलाकर सामान्य रूप से दास होते हुये भी साम्राज्यसंपर्क के कारण समान भाव को अपना लिया । रास्ते की धूल के कणों पर जब पैर पड़ते हैं तो वे आपत्ति के कारण समान दुःख का अनुभव करके परस्पर मिलकर जम जाते हैं ।

इत्थं वृत्तिरजायतेह महती संघस्यशक्तेर्नृणां
एकीभावमयाः प्रबन्धविषये जाताः समग्रा जनाः ।
आंग्लानां निजदेशशासनविधिं स्वाराज्यगर्भान्वितं
दृष्ट्वा भारतवासिनी च जनता स्वतंत्र्यकांक्षां दधौ ॥३९॥

इस प्रकार लोगों की संघशक्ति से एक बड़ी मनोवृत्ति यहाँ पैदा हो गई । प्रबन्ध के विषय में सब लोग एक हो गये । उन्होंने

देखा कि अंगरेज अपने देश में स्वराज के अनुसार अच्छा शासन कर रहे हैं। इसको देखकर भारत वासियों के मन में भी स्वतन्त्रता की इच्छा उत्पन्न हो गई।

कांक्षामात्रमलं नृणां न हृदये साध्यस्य पूर्तौ क्वचिद्
योग्यायैव ददाति वांछितफलं विश्वम्भरः सर्वदा।
यावद् दुष्टगुणान् त्यजेन्न जनता जातीयताघातकान्
तावच्छक्तिमुपैति नैव, न च वा मुञ्चेत् पराधीनताम्॥४०॥

साध्यकी पूर्ति के लिये लोगों के हृदय में केवल इच्छा मात्र पर्याप्त नहीं है। ईश्वर सदा योग्य को ही चाहा हुआ फल देता है। जब तक जनता जातीयता को नाश करने वाले दुर्गुणों को नहीं छोड़ती, उस समय तक उसमें शक्ति नहीं आती और न पराधीनता जाती है।

योक्त्रं हातुमनेकधा परनृणां प्रैच्छन्निहस्था जनाः,
विद्रोहा विविधा बिनाऽपि विधिना आकस्मिका उत्थिताः।
स्वार्थ-द्रोह-कुरीति-कुत्सितनयैर्व्याप्ते समाजे सति
व्यापाराः सकला बभूवुरफला दासत्वमोक्षैषिणाम्॥४१॥

यहाँ के लोगों ने कई बार विदेशियों के जुये को हटाने की इच्छा की। बहुत से विधिशून्य आकस्मिक विद्रोह भी हुये। परन्तु समाज में स्वार्थ द्रोह, कुरीति, अन्याय होने के कारण दासत्व से मुक्ति पाने की इच्छा करने वालों के सब व्यापार असफल हुये।

तस्मिन्नेव युगे दयेशदयया दुःखार्तदुःखान्तक
उद्धर्तुं भवसागराद् भवजनान् पापाम्बुधौ मज्जितान्।

मार्गं दर्शयितुं मुमुक्षुमनुजान् सत्यं सुगं वैदिकं
सौभाग्याच्च समाययौ किल दयानन्दाख्यदेवो महान् ॥४२॥

उसी युग में दया के स्वामी (ईश्वर) की दया से दुःखियों के दुःखों का नाशक, संसार के पाप समुद्र में डूबे हुये लोगों को भवसागर से निकालने के लिये और मुमुक्ष लोगों को सच्चा सुगम वैदिक मार्ग दिखाने के लिये सौभाग्य से आ गया। अर्थात् महान् देव दयानन्द ।

दृष्टं तेन चलन्ति वामपथतो लोका अविद्यावशा-
दिच्छन्त्येव तथाऽपि जीवनसुखं दातुः फलं कर्मणाम् ।
उप्त्वा-कण्टकबीजमज्ञकृषका ईप्सन्ति मिष्टं फलं
कुर्वन्नेव हि कर्म वेदविहितं शान्तिं बुधः प्रेप्सतु ॥४३॥

दयानन्द स्वामी ने देखा कि लोग अविद्या के कारण गलत मार्ग पर चलते हैं और कर्मों के फल को देने वाले (ईश्वर) से जीवन के सुख की इच्छा करते हैं। मूर्ख किसान काँटे बो कर मीठा फल चाहते हैं। वेदोक्त शुभकर्म करके ही बुद्धिमान् आदमी को शान्ति की इच्छा करनी चाहिये ।

तस्माद् वेदमधीत्य दिव्यतपसा ज्ञात्वा च तत्त्वं महत्,
प्रोक्ता लोकहिताय लोकगुरुणा लोकेशवाणी शुभा ।
ज्ञानं येन शुभाशुभस्य भवताद् दूरी भवेदज्ञता,
मोक्षं लौकिकपारलौकिकभवं लोका लभन्तां सदा ॥४४॥

इसलिये बहुत दिनों तप कर के वेद को पढ़कर तत्व को जानकर लोक के हित के लिये लोक के गुरु दयानन्द ने लोक के ईश परमात्मा की शुभ वाणी का प्रचार किया। जिससे शुभ

और अशुभ का ज्ञान हो, अज्ञान दूर हो और लोगों के सदा इस लोक और परलोक के ज्ञान से उत्पन्न हुआ मोक्ष मिले।

सूर्य्योवृत्रसमं तमो ह्यपनुदन् ज्योतिर्निशान्ते यथा
भूलोके वितनोति दिक्ष्वसुभृतां ज्ञानाय मोदाय च।
एवं वेददिवाकरः समुदगाज् ज्ञानांशुजालं किरन्
यातान्तं रजनी, बभूव पुनरप्यार्योदयो भारते ॥४५॥

वृत्र के समान अन्धकार को मिटाकर सूर्य्य रात के अन्त में जैसे भूलोक में सब दिशाओं में प्राणियों के ज्ञान और आनन्द के लिये प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार वेद का सूर्य ज्ञान की किरनों को फैलाता हुआ निकल आया, रात का अन्त हो गया। भारत में फिर आर्योदय हुआ।

इत्यार्योदये महाकाव्ये दशमः सर्गः समाप्तः।



मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

उपाध्याय साहित्य

Light of Truth (सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद सजिल्द) १५·००
Philosophy of Dayanand १२·००
आस्तिकवाद ६·००
अद्वैतवाद ५·००
शांकरभाष्यालोचन ५·००
जीवन-चक्र ५·००
Vedic Culture ५·००
संध्या क्या? क्यों? कैसे? ३·००
पूजा क्या क्यों कैसे ३·००
सायण और दयानन्द ३·००
कम्युनिज्म ३·००
आर्योदय काव्यम् (दो भाग) प्रत्येक ३·००
इस्लाम और आर्य समाज २·००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी ३·००
संस्कार प्रकाश २·००
गंगा-ज्ञान-धारा २·००
Social Reconstruction by Buddha and Dayananda २·००
आर्यस्मृति २·००
हम क्या खावें घास या मांस २·००
धर्म—तर्क की कसौटी पर २·००
कर्म-फल-सिद्धान्त १·५०
भगवत् कथा १·५०
सनातन धर्म १·००
वैदिक सिद्धान्त विमर्श १·२५
वैदिक मणिमाला १·२५
धर्म-सुधा-सार ०·९०
सत्यार्थ प्रकाश—एक अध्ययन ०·९०
राष्ट्र निर्माता स्वामी दयानन्द १·००
मूर्ति पूजा ०·७५
राजा राम मोहन राय, केशव चन्द्रसेन, दयानन्द
उपदेश सप्तक
शंकर, रामानुज, दयानन्द
Svami Dayananda
Vedic Philosophy
Devas in Vedas
Superstition
फौसे कथा (उर्दू काव्य) २·००
सनातन धर्म और आर्य समाज ००·२०

वैदिक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद ३